शाश्वत् सुख का मार्गदर्शक मासिक-पत्र

आत्मधर्म

卐 : संपादक : जगजीवन बाउचंद दोशी (सावरकुंडला) 卐

अक्टूबर : १९६३ ☆ वर्ष उन्नीसवाँ, आश्विन प्रथम, वीर नि०सं० २४८९ ☆ अंक : ६

सिद्ध और सम्यक्त्वी

धर्मी जीव को हित, अहित और उसके कारण का नि:संदेह निर्णय होता है।

★

सम्यग्दर्शन प्रगट होने से आत्मा का अनुभव होता है। जैसा अनुभव सिद्ध भगवान को होता है, वैसा ही चौथे गुणस्थान में सम्यक्त्वी जीव को होता है; सिद्ध को पूर्ण अनुभव होता है और सम्यक्त्वी को परिपूर्ण स्वरूप का निश्चयसहित अंशत: अनुभव होता है, परंतु जाति तो वही है। सम्यक्त्वी आनन्द-सागर के अमृत का अपूर्व स्वाद ले रहा है, आनन्द के स्रोत में निमग्न है।

—समयसार प्रवचन से

वार्षिक मूल्य
तीन रुपया

[२२१]

एक अंक
चार आना

श्री दि० जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट, सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

समयसारजी शास्त्र

परमागम श्री समयसारजी शास्त्र जो अत्यंत अप्रतिबुद्ध अज्ञानियों के लिये भी समझानेवाला शास्त्र है जिसमें चारों अनुयोगों की बात आ जाती है। यह ग्रंथ पहले दिगम्बर जैन मुमुक्षु मंडल बंबई द्वारा १५०० छपवाया गया था जो कि १ मास में ही सारा बिक गया एवं फिर भी अत्यधिक मांग होने से श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट सोनगढ़ की ओर से तृतीयावृत्ति छपने का काम शुरु हो गया है, सो शीघ्र ही पूर्ण होकर धर्म जिज्ञासुओं की सेवा में प्रस्तुत किया जावेगा।

—प्रकाशक

प्रश्नोत्तर

प्रश्न—व्यवहारनय से आत्मा परवस्तु का कार्य कर सकता है ?

उत्तर—नहीं, बृहद्द्रव्यसंग्रह गाथा ९ की टीका में कहा है कि 'शुद्ध या अशुद्ध भावों का कर्तृत्व जीव में जानना चाहिये और हस्तादि के व्यापाररूप परिणामों का कर्तृत्व न मानना चाहिये।' अत: निमित्त बताने के लिये व्यवहारनय की मुख्यता से कथन होते हैं किंतु कार्य नहीं होते।

प्रश्न—शुभभावों से निर्जरा होती है या नहीं ?

उत्तर—नहीं, जो कि निमित्त का ज्ञान कराने के लिये ऐसा व्यवहार से कहा जाता है किंतु निर्जरा का दो प्रकार नहीं है किंतु उसका निरूपण दो प्रकार है, ज्ञानी हो या अज्ञानी शुभराग से नया कर्मों का बंध होगा ही होगा।

शाश्वत सुख का मार्गदर्शक मासिकपत्र

आत्मधर्म

卐 : संपादक : जगजीवन बाउचंद दोशी (सावरकुंडला) 卐

अक्टूबर : १९६३ ☆ वर्ष उन्नीसवाँ, आश्विन प्रथम, वीर नि०सं० २४८९ ☆ अंक : ६

उत्तम आर्जव धर्म

पूज्य श्री कानजी स्वामी का प्रवचन

सम्यग्दर्शनपूर्वक आत्मा का मोक्षसाधनरूप वीतरागभाव, वह उत्तम आर्जव धर्म अंग है। स्वामी कार्तिकेय ने अपनी द्वादशानुप्रेक्षा की गाथा ३६९ में कहा है कि जो मुनि मन में वक्ररूप से चिंतवन नहीं करे, शरीर से वक्रता न करे और वचन से वक्र न बोले तथा अपने दोषों को छिपावे नहीं किंतु महा मध्यस्थ और निश्चल रहे, ज्ञाता दृष्टा स्वभाव में सावधान रहे, वह आर्जव धर्म है। उसमें स्वसन्मुखतायुक्त परिणामों की शुद्धता धर्म है, और किसी भी बात की ओट लेकर अपने दोष न छिपाना, वक्रता न होने पावे सरलता रखना आदि के शुभ परिणाम व्यवहार धर्म है। अज्ञानी जीव की व्यवहारी सरलता पुण्य है।

वस्तुतः आत्मा ज्ञानानंद साक्षी है, उसी के आश्रय से लाभ है, जो ऐसा न मानकर बाहर से, निमित्त से, शुभराग से लाभ माने; देह की क्रिया से धर्म माने, स्वाश्रय से धर्म है, ऐसा न माने, व्यवहार के आश्रय से आत्महितरूप धर्म का होना माने, दूसरों से ऐसा मनवाए, सो वक्रता है। ऐसी मान्यतावाला स्वयं अपने को ठगता है। भेदज्ञान द्वारा-ध्रुव ज्ञाता स्वभाव के आश्रय से ही धर्म होता है। अपनी भूमिका के अनुसार निमित्त-राग आदि होते हैं, फिर भी पराश्रय से कोई धर्म नहीं होता, ऐसा मानना, जानना और स्व-सन्मुख होना, आर्यता-सरलतारूप उत्तम आर्जव धर्म है। इस विवेक ज्ञान के बिना बाह्य सरलता पुण्य बंध का कारण है। मोक्षमार्ग में वर्णित आर्जव धर्म स्वावलम्बी

वीतरागभाव है और मन-वचन-काया की सरलता का भाव शुभराग है। राग, पुण्य की रुचि छोड़, स्वाश्रय दृष्टि और अंदर में एकाग्रता द्वारा अपने शुद्ध चैतन्य के आश्रय में सावधान रहते हुए वक्रता का भाव उत्पन्न न होने देना आर्जव धर्म है।

आत्मार्थी मुमुक्षु लौकिक जीवन के व्यवहार में भी मन, वचन और काय की सरलता रखे अर्थात् मन में कुछ हो और वचन उससे विपरीत नहीं कहे। दूसरे को भ्रम में डालने का विचार और प्रयत्न करे तो यह सोचे कि मैं दूसरों को ठगता हूँ, वस्तुतः वह अपने को ही ठगता है। धर्मी और धर्म का जिज्ञासु जीव अपने दोष को जानता है, वह कपट नहीं करता है। इसलिए दोष को छिपाता नहीं है किंतु सरल बालकवत् अर्थात् विनीत शिष्य की तरह अपने दोषों को गुरु को बता देता है। लोक में सरलता रखनी, कपट न करना, सत्य बोलना, ऐसा कहा जाता है किंतु ये शुभभाव के आचरण हैं, उनका निषेध नहीं है किंतु उनको उत्तम आर्जव धर्म की संज्ञा नहीं है।

प्रश्नः—शुभभाव और बाह्य व्यवहार करना पड़ता है या नहीं ?

उत्तरः—इस जाति की भूमिकावाले के उस समय ऐसा राग आए बिना रहता नहीं।

शरीर आदि जड़ का कार्य आत्मा किसी दृष्टि से नहीं कर सकता किंतु यदि कोई यह माने कि मैं उनका कर्ता हूँ, यदि मैं हूँ तो उनमें व्यवस्थित कार्य होता है, ऐसी मान्यता मिथ्यात्व है। प्रत्येक द्रव्य की अवस्था प्रति समय बदलती रहती है। प्रत्येक का कार्य अपनी योग्यतानुसार उसी से होता है, ऐसा वस्तुस्वभाव होते हुए भी यदि कोई यह माने कि मैं करूँ तो ऐसा हो, यह मान्यता दो द्रव्यों को एक माननेवाले, पराधीन माननेवाले मिथ्यादृष्टि की है।

शंकाः—क्या मकान इसीप्रकार बनता है ?

समाधानः—जगके निश्चित क्रमानुसार, पुद्गलपरावर्तन के नियमानुसार पुद्गल स्वयं पलटकर उसके स्वकाल में मकान आदिरूप होता है, उसका कोई कर्ता, हर्ता या स्वामी नहीं है। लोक व्यवहार में निमित्त का ज्ञान कराने के लिए दूसरों को कर्ता कहा जाता है, किंतु दूसरे का कार्य किसी के अधीन नहीं है।

आत्मा का कार्य अपनी आत्मा में ही है; शरीर की क्रिया तथा जगत के प्रत्येक पदार्थ का कार्य उस द्रव्य से ही हो रहा है।

शंकाः—जड़ में ज्ञान नहीं है, तब उसमें क्या कार्य करने की शक्ति होती है ?

समाधानः—हाँ! वह भी अपनी अनादि-अनंत सर्व शक्ति से परिपूर्ण है, जड़ेश्वर है,

अकेला ही परमाणु स्वयं उत्कृष्ट गमन कर एक समय में १४ राजू (असंख्य योजन) जा सकता है, उसको कोई चलानेवाला नहीं है। ईश्वर की इच्छा बिना पत्ता न चले, इसका अभिप्राय क्या? जड़ परमाणुओं में क्रियावती नाम की शक्ति है, उस शक्ति बिना वह क्षेत्रांतर नहीं जा सकता, किंतु जड़ उस शक्ति से युक्त है। यदि पत्ता पवन से चले तो पवन को कौन चलाता है। इसप्रकार पर के कारण से कार्य मानने से अनवस्था नामक बड़ा दोष लग जाता है।

संयोग में एकताबुद्धिवाला, पर से कार्य होना माननेवाला, पर में अनुकूल-प्रतिकूल और इष्ट-अनिष्ट मानकर दु:खी होता है। 'मैं करूँ, मैं करूँ, यही अज्ञानता का बोझा जैसे कुत्ता ले।' वस्तु में परिणमनशक्ति है, उसी से उनकी अवस्था निरंतर प्रतिसमय उत्पाद-व्ययरूप बदलती ही रहती है। यही उसकी व्यवस्था है, उसमें दूसरे किसी कर्ता की जरूरत नहीं है। जगत का प्रत्येक पदार्थ अनादि-अनंत है, उसमें प्रत्येक समय नई-नई अवस्था की उत्पत्ति, पुरानी दशा का व्यय होता है और मूल वस्तु शाश्वत ध्रुव रहती है। इसप्रकार स्व-परसत्ता का निश्चय कर, पर में कर्ता, भोक्ता और स्वामित्व की श्रद्धा छोड़, राग में कर्ताबुद्धि छोड़कर, पराश्रय से लाभ मानने की श्रद्धा छोड़कर स्वावलम्बी ज्ञायकमात्र स्वरूप की निर्विकल्प श्रद्धा करे तो सुख की शुरुआत हो। ऐसा किए बिना अंश मात्र भी आत्महित नहीं होता। इस आत्म स्वतंत्रता की बात को लोग नहीं सुनते हैं।

उत्तम शौच धर्म

आज दश लक्षणी पर्व का चौथा शौच धर्म है। पूर्ण ज्ञानानंद पवित्र स्वभाव के लक्ष में ज्ञातापने में संतोष युक्त रहना, उसमें जितना वीतरागभाव है, उसे शौचधर्म कहते हैं। यह मुनि की मुख्यता से कथन है। मोह-क्षोभरहित, रागद्वेष अज्ञानरहित आत्मपरिणाम चारित्र धर्म है। मैं वीतरागी आनंदघन स्वभावी हूँ, उसके आश्रय से रागद्वेष विषमतारहित परिणाम धर्म है। वर्तमान चारित्र में कमजोरी जितना दोष है, वह आत्मा के ध्रुवस्वभाव में नहीं है। इसप्रकार रागादि का

अकारणस्वरूप पूर्ण ज्ञानघन स्वभाव में दृष्टि, ज्ञान और लीनता करनेवाला अतीन्द्रिय आनंद में तृप्तिरूप सहज संतोष नामक धर्म है:—

सम संतोष जलेन च यः धोवति, तृष्णा लोभ मल पुञ्जा।
भोजन शुद्धि विहीनः तस्य शुचित्व भवेत विमलं॥३९७॥

अर्थः—समभावः रागद्वेष मोह रहित संतोष परिणाम। नित्य ज्ञानानंदस्वभाव में एकाग्रता-स्वसंवेदन द्वारा अपवित्रता का व्यय, और पवित्रता की उत्पत्ति संतोष है। जो ऐसे सहजानंदमय संतुष्ट भावरूपी जल से तृष्णा और लोभरूपी मल समूह को धोता है और भोजन की अति चाह से रहित है, वह मुनि निर्मल वृत्तिवाला होता है।

भावार्थः—किसी भी संयोग-वियोग में इष्ट-अनिष्ट भाव न हो, अपने परमानंदमय ज्ञानस्वभाव में ही स्वाश्रय द्वारा सुख मानना और उसमें लीनता अर्थात् समता की मौज द्वारा भावी विषयों को चाहरूप तृष्णा तथा वर्तमान सामग्री में लिप्तारूप लोभ के त्याग द्वारा स्वयं खेदरूपी मल को धोने से पवित्र भाव और प्रसन्नता होते हैं। मुनि के अन्य त्याग तो होता ही है, वस्त्रादि होते ही नहीं किंतु आहार में भी वह तीव्र लोभ नहीं होने देता।

लाभ-अलाभ, सरस-नीरस में समभाव रखना, ज्ञानानंदस्वरूप में सावधानी रखना, उत्तम शौच धर्म है। उस भूमिका में जो शुभराग रहा, वह व्यवहार धर्म है। मिथ्यादृष्टि के शुभराग में उपचार से भी व्यवहार धर्म नहीं होता है।

स्वसंबंधी अथवा परसंबंधी जीवन का लोभ, आरोग्य रहने का लोभ, इन्द्रियों के पुष्ट रखने का लोभ और उपभोग का लोभ—ये लोभ कषाय की चार प्रकार प्रवृत्तियाँ हैं। जहाँ अपने निर्मल ज्ञातास्वभाव की श्रद्धा, ज्ञान, शांति द्वारा ये सभी प्रकार की कषाएँ न होना, उत्तम शौचधर्म है।

अंतरंग में प्रकट असीम ज्ञानानंदस्वभाव समुद्र में प्रवेश कर चार प्रकार के लोभ न होना और उसके स्थान में निराकुल आनंद होना संतोष धर्म है। लोभादि कषायों को हटाना नहीं पड़ता। जिससमय राग आया उसे कौन रोक सकता है? वह दूसरे समय तो रहता नहीं, तब वह फिर उसे कैसे हटावे? और जो राग उत्पन्न नहीं हुआ, उसे कैसे नष्ट करें? किंतु त्रिकाली ज्ञानानंदस्वभाव में कषाय का प्रवेश नहीं है। ऐसे निर्मल स्वभाव में दृष्टि, ज्ञान और एकाग्रता होने से संतोष होना, उत्तम शौच धर्म है।

भूतार्थ के आश्रय से ही धर्म होता है तथापि जीव अभूतार्थ में धर्म क्यों मानता है ?

[श्री पंचास्तिकाय, गाथा १७२ पर पूज्य गुरुदेव का प्रवचन, राजकोट, तारीख ७-५-६२]

[श्री जिनेश्वर भगवान के उपदेश में दो नयों (दो दृष्टिकोण) द्वारा निरूपण होता है। वहाँ निश्चयनय द्वारा तो सत्यार्थ निरूपण किया जाता है और व्यवहारनय द्वारा अभूतार्थ-असत्यार्थ निरूपण किया जाता है। अभूतार्थ का वर्णन क्यों किया है ?—उसके द्वारा निमित्त, भेद और गुणस्थान के अनुसार उसका विषय किसप्रकार का होता है, वह बताने के लिये व्यवहारनय द्वारा उसका वर्णन किया है।]

सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र निश्चय वीतरागभावरूप है, वह शुद्धात्माश्रित होने से निश्चय=भूतार्थ मोक्षमार्ग है, मोक्ष का अभिन्न साधन है, सच्चा साधन है। जहाँ निश्चय अभेद साधन है, किंतु पूर्ण वीतरागता प्रगट नहीं की, वहाँ गुणस्थान के अनुसार कैसा शुभराग निमित्तरूप से-सहचारी होता है, वह बताने के लिए उस शुभराग का व्यवहाररत्नत्रयरूप अथवा भिन्न साधनरूप व्यवहारनय द्वारा निरूपण किया जाता है। दोनों को यथावत् जानना, वह प्रमाणज्ञान है।

यहाँ तो जिन्हें प्रमाणज्ञान नहीं है, एकांत पराश्रयरूप व्यवहाराभास का अवलंबन करनेवाले हैं—ऐसे अज्ञानी जीव अभूतार्थ धर्म को साधते हैं, उनकी प्रवृत्ति और उसका फल कहा जाता है।

आत्मा शांत सच्चिदानंदमय ज्ञायक है, पर का कर्ता, भोक्ता या स्वामी नहीं है, रागादि का उत्पादक नहीं है।—ऐसा उसका शुद्ध स्वरूप अनादि-अनंत ज्ञायक है; उस ओर उन्मुख होकर उसकी श्रद्धा, रुचि तथा आश्रय न करके बाह्य में भला-बुरा मानकर सच्चे देव, शास्त्र, गुरु को मानता है, नव तत्त्व, छह द्रव्य और शुभ प्रवृत्तिरूप संयम की प्रतीति करता है, वह शुभराग है, उस राग द्वारा अपने को धर्मी मानता है। छह द्रव्य, नव तत्त्व तथा सच्चे देवादि को मानना, अन्य को नहीं मानना तथा व्यवहाररत्नत्रय के राग की प्रवृत्ति में धर्म का आचरण मानकर संतुष्ट होना, वह

व्यवहाराभास है। जो शास्त्र स्वाध्याय और श्रवण तो करते हैं, किंतु उस ओर की वृत्तिरूप शुभराग में धर्म मानते हैं, वे व्यवहार को ही निश्चय माननेवाले मिथ्यादृष्टि हैं।

जैसा सर्वज्ञ वीतरागदेव ने कहा है, तदनुसार नहीं मानते किंतु उससे उलटा मानते हैं और विरुद्धभाव को भ्रम से हितकारी जानकर सेवन करते हैं और जब तक अभूतार्थ को (व्यवहार को) सत्यार्थ मानते हैं, तब तक वे सर्वज्ञ-वीतराग कथित सत्यार्थ धर्म को समझने के लिये योग्य नहीं हैं।

प्रश्नः—अभूतार्थदर्शितनय द्वारा कहा जानेवाला व्यवहार धर्म वास्तव में धर्म नहीं है तो फिर एक भूतार्थदर्शी निश्चयनय द्वारा भूतार्थ (सत्यार्थ) निरूपण करना चाहिये, अभूतार्थ (उपचार-व्यवहार) निरूपण किसलिये किया जाता है ?

उत्तरः—जिसे सिंह का यथार्थ स्वरूप सीधा समझ में न आता हो, उसे सिंह के स्वरूप के उपचरित निरूपण द्वारा अर्थात् बिल्ली के स्वरूप के निरूपण द्वारा सिंह के यथार्थ स्वरूप का ज्ञान कराया जाता है; उसीप्रकार जिसको वस्तु का यथार्थस्वरूप सीधा समझ में न आये, उसे वस्तुस्वरूप के उपचार-कथन द्वारा वस्तुस्वरूप का यथार्थ ज्ञान कराया जाता है और विस्तृत कथन को संक्षेप में कहने के लिये भी व्यवहारनय द्वारा उपचरित अभूतार्थ कथन किया जाता है। यहाँ इतना ध्यान रखना चाहिये कि—जो पुरुष बिल्ली के निरूपण को सिंह का निरूपण मानकर बिल्ली को ही सिंह मान ले, वह तो उपदेश के योग्य ही नहीं है; उसीप्रकार जो पुरुष उपचरित को ही (व्यवहार धर्म को ही) सत्यार्थ निरूपण मानकर वस्तुस्वरूप को—मोक्षमार्ग को—विपरीतरूप से समझ बैठता है, वह तो उपदेश के ही योग्य नहीं है।

उनके व्यवहाराभासरूप श्रद्धा-ज्ञान का वर्णन पहले हो चुका है। अब, वे चारित्र के लिए कहाँ भूले हैं, सो कहते हैं। निश्चय वीतरागभाव, वही आत्मा का सच्चा चारित्र है, किंतु उसका निरूपण दो प्रकार से है। साधकदशा में दो नय होते हैं। अंशतः वीतरागता, वह स्वाश्रयरूप निश्चय -चारित्र है और साथ में शुभराग है, वह चारित्र तो नहीं है परंतु जिसको स्वाश्रित वीतरागभाव है, उसे उसका निमित्तपना है, ऐसा बताने के लिये व्यवहार से शुभ को भी चारित्र कहना, वह उपचार निरूपण है। शुभ अथवा अशुभराग का चारित्र, वह आत्मा का चारित्र नहीं है, मोक्षमार्ग का चारित्र नहीं है, किंतु संसारमार्ग का चारित्र है।

हिंसा के त्याग के लिये वह बाह्य में हिंसा, अहिंसा मानता है। स्वरूप में असावधानी, प्रमादपरिणति, वह हिंसा है। मिथ्यात्व ही मुख्य हिंसा है, उसकी उसे खबर नहीं है।

एकेन्द्रियादि प्राणियों की हिंसा न करना, दया पालना, झूठ नहीं बोलना, पाँच पापों से निवृत्ति और शुभ में प्रवृत्ति, इनमें सर्वविरतिरूप भाव, वह राग का अंश है। उसको व्यवहार अहिंसा कब कहा जायेगा कि निश्चय वीतरागभावरूप चारित्रदशा हो तब। व्यवहार अहिंसा, वह पुण्य परिणाम है, शुभराग है, धर्म नहीं। मोह-क्षोभरहित आत्मा का परिणाम, वह धर्म है। शुभराग में धर्म नहीं है, वह आत्मपरिणामरूप चारित्र नहीं है, फिर भी उसमें चारित्र धर्म मानकर अपनी मिथ्यादृष्टि से वह जीव शुभराग की प्रवृत्ति में मग्न रहता है।

बाह्य हिंसा का त्याग और अहिंसारूप शुभराग का ग्रहण, वह राग है, आस्रव है। आस्रव, वह बंधन का कारण है; मोक्ष का कारण नहीं है। [वह शुभराग ज्ञानी को भी होता है किंतु वह उसे वास्तविक धर्म नहीं मानता।] झूठ नहीं बोलना, सत्य बोलना, अचौर्य का पालन करना, अब्रह्म का सेवन नहीं करना, ब्रह्मचर्य मन, वचन, काय से पालना, धन, धान्य, वस्त्रादि परिग्रहण का त्याग—यह सब शुभराग की वृत्तियाँ हैं, उनसे पुण्य होता है, चारित्र नहीं होता, क्योंकि रागभाव, वह निर्विकार चैतन्य की जागृति का नितांत विरोधी भाव है, विष है। छठवें गुणस्थानवर्ती ज्ञानी मुनि के महाव्रतादि का शुभभाव भी निश्चय से विषकुंभ ही है। जैसा हो, उसे वैसा ही जानना, सो सम्यग्ज्ञान है, क्योंकि जिस भाव से नया बंधन हो, उस भाव से वीतरागी श्रद्धा अथवा चारित्र धर्म नहीं हो सकता; तथापि कोई भ्रम से अभूतार्थ धर्म का साधन करते हुए अपने को भूतार्थ धर्म का साधक माने, मोक्षमार्गी माने, वह मान्यता मिथ्यात्वरूपी महा पाप है। हिंसादि पाँच पाप तथा सप्त व्यसन के महापाप की तुलना में मिथ्यात्व का पाप अनंतगुना है—ऐसा शास्त्र में कहा है।

यहाँ शुभभाव छोड़कर पाप भाव करने के लिये नहीं कहा है, किंतु पुण्य-पाप की मर्यादा बतलायी है, उसको वास्तव में धर्म माने तो मिथ्यात्व है। इसप्रकार विपरीत मान्यता का निषेध करके, नय विभाग से कथनपद्धति को जानकर, निश्चय को निश्चय और व्यवहार को व्यवहार के स्थान में जाने तो प्रमाणज्ञान है। शुद्ध निश्चयनय के विषय को भूतार्थ जानकर उसका आश्रय करे और पराश्रयरूप व्यवहार वास्तव में धर्म के लिये आदरणीय नहीं है, ऐसा जाने तो हित में प्रवृत्ति हो।

नय विभाग द्वारा शास्त्रों का अर्थ न समझे, उसे चारों अनुयोगों के शास्त्रों के कथन में विरोध भासित होता है। ज्ञानी को चारों अनुयोगों के शास्त्रों में वीतरागता ही उपादेय भासित होती है, इसलिये स्वतंत्रता, यथार्थता और वीतरागतारूप तात्पर्य को ग्रहण करता है।

आत्मा ज्ञानानंदरूप पवित्र है। उसमें मिथ्यात्व, रागादि के आश्रव रहित श्रद्धा, ज्ञान और

एकाग्रता द्वारा ही आनंद की उत्पत्ति और जमाव होता है। आत्मा में अतीन्द्रिय शांतरस का जमाव करना, उसको भगवान ने चारित्र कहा है, किंतु अज्ञानी बाह्य में अशुभराग का त्याग, शुभ का ग्रहण, उसमें चारित्र और संयम मानता है।

अज्ञानदशा में सच्चे व्रत, तप होते ही नहीं, इसलिये उनको बालव्रत और बालतप कहा है। उसके (अज्ञानी के) व्रतादि को व्यवहार व्रत, व्यवहारतप नाम नहीं दिया जाता, किंतु मिथ्याश्रद्धा के कारण वह व्यवहाराभास ही है।

तत्त्वार्थसूत्र में ज्ञानी की भूमिका में महाव्रतादि को आस्रव में (अर्थात् बंध के कारण में) कहा है। परिग्रह रखने का भाव, वह पापभाव है और छोड़ने का भाव, वह पुण्य है। अज्ञानी जीव व्रतादि के शुभराग से धर्म मानता है, मिथ्यात्व और राग अर्थात् आस्रवतत्त्व को हितकारी मानता है; इसलिये पाँच महाव्रत के राग की वृत्तियों को आत्मा का चारित्र मानकर उनमें तन्मय होताा है। किंतु भगवान आत्मा वर्तमान में भी रागादि विकार से पार है, अतीन्द्रियज्ञान द्वारा अनुभव में आवे ऐसा है, तथा उसके द्वारा धर्म और शांति प्राप्त होती है, ऐसा मिथ्यादृष्टि नहीं मानता; इसलिये अंतर में आत्मा को पहिचानकर उसमें तन्मय नहीं होता। आत्मा के आश्रय से चारित्र प्रगट होता है अर्थात् पराश्रय की दृष्टि और राग की ओर का लक्ष्य छोड़ने के लिये स्वसन्मुख दृष्टि और चारित्र चाहिये, अतीन्द्रिय आनंदरूप चारित्र में लीन होना चाहिये, यह बात अज्ञानी को नहीं रुचती; इसलिये आत्मा के चारित्र में किंचित् तन्मयता नहीं करता। धर्म के नाम से राग को धर्म मान लेता है, राग को करने योग्य मानता है, इसलिये वह मिथ्यादृष्टि ही रहता है।

महाव्रत, दया, दान, भक्ति का भाव, वह पाप नहीं है, मिथ्यात्व नहीं है, किंतु वह शुभराग है, आस्रवतत्त्व है, बंध का कारण है। उसको वह बंध का कारण न मानकर धर्म का कारण अथवा आत्मा का चारित्र मानता है, इसलिये उसकी नवों तत्त्वों में भूल है। जिस भाव से संसार फलित हो, उस भाव से मोक्ष अथवा मोक्ष का उपाय कैसे होगा ?

'वीत्यों काल अनंत ते कर्म शुभाशुभभाव,' उन शुभाशुभभावों का छेदन करे, ऐसी दशा आत्मा में उत्पन्न करना, वह मोक्ष का उपाय है, जो अपूर्व है।

प्रभु! अपनी प्रभुता को तूने ही मिथ्या मान्यता की ओट में छिपा रखा है, अनंत बार धर्म के लिये व्रत, तप किये; इतनी क्षमा-शांति धारण की कि चमड़ी उतार कर नमक छाँटने पर भी क्रोध नहीं किया; क्रोध, मान, माया और लोभ के प्रबल कारण मिलने पर भी च्युत नहीं हुआ; ऐसे

शुभभाव किये, तीव्र क्रोधादि नहीं किये, तथापि वह सहन करने की परलक्षी वृत्ति शुभराग है; धर्म नहीं है। जो भूतार्थ अर्थात् सत्यार्थ धर्म नहीं, उसको वास्तविक धर्म माने, वह मिथ्यादृष्टि है। ज्ञानी को ऐसे शुभराग आते अवश्य हैं, किंतु वह राग करना चाहिये, ऐसा वे किंचित् भी नहीं मानते। और अज्ञानी तो राग करनेयोग्य हैं—ऐसी आस्रव की भावना भाता है; इसलिये वह ज्ञातास्वभाव का शत्रु है। इसप्रकार अज्ञानी जीव भले ही पाँच महाव्रतों का पालन करता हो, किंतु उनमें तल्लीन रहता है। उससे अपूर्वता क्या हुई? शुभराग में धर्म माननेवाला आत्मा में निर्विकल्प अनुभवसहित श्रद्धा-ज्ञान, चारित्र का स्वरूप क्या है, उसका विचार करने के योग्य भी नहीं होता।

ज्ञानी को निचली भूमिका में राग आता है, तथापि उसका आदर नहीं है, भावना नहीं है, रुचि नहीं है; सर्वप्रकार के रागादि का अंतर से निषेध वर्तता है। वह जानता है कि रागादि आस्रवतत्त्व है, इसलिये वह मेरा स्वरूप नहीं है, क्योंकि मैं तो नित्य ज्ञानानन्द जागृतस्वरूप हूँ, रागादि उससे १०० टका विरुद्ध हैं। उनको टालना नहीं पड़ता, किंतु स्वाश्रय में लीनतानुसार वे टल ही जाते हैं अर्थात् उत्पन्न नहीं होते। ऐसे भानपूर्वक स्वरूप में आंशिक एकाग्रता की भूमिका बढ़ती जाती है, उसमें बीच में पाँच महाव्रत, नग्नतादि २८ मूलगुण के शुभभाव आते अवश्य हैं, किंतु उनको वह वास्तविक धर्म नहीं मानता, किंतु वह पुण्यबंध का कारण है, शुभास्रव है-ऐसा निःशंकरूप से मानता है। जो धर्म नहीं है, उससे किसी को, किसी प्रकार आत्मकल्याणरूप धर्म होता होगा तो?—ऐसी शंका धर्मी जीव को नहीं होती।

अनादि से यह बात कभी सुनी नहीं, कभी परिचय नहीं किया। कर्ता, भोक्ता, काम, भोग और बंधन की कथा में रुचि कर रहा है तथा उसकी पुष्टि करनेवालों का संग रुचिकर लगता है। काम, भोग और बंधन की बात से भिन्न प्रकार की बात—भगवान आत्मा राग से और पर से भिन्न ज्ञानानंद है, यह बात—प्रीति से श्रवण नहीं की, रुचि में नहीं ली।

एकेन्द्रिय, दो इंद्रिय आदि जीवों को नहीं मारना, दया पालना, चोरी नहीं करना, इंद्राणी डिगाने को आये, तथापि न डिगे, ऐसे ब्रह्मचर्य की प्रीति आदि शुभराग है। बाहर से देखनेवाले को उसकी महिमा आती है कि आहाहा!! धन्य... यह चारित्र पालता है किंतु भगवान ने उसको आत्मा का चारित्र नहीं कहा, वह तो राग का चारित्र है।

शुभभाव करने या न करने की बात नहीं है परंतु अज्ञानी को उसमें मिथ्या अभिप्राय (जो कि अनंत संसार का कारण है) क्यों होता है कि जिसमें आत्महितरूप धर्म नहीं, उसको धर्म मानता

है, जैसा वस्तु का स्वरूप है, वैसा नहीं मानता, किंतु उससे विरुद्ध मानता है, विपरीतता में ही तन्मय होकर रहता है। उस असाधारण भूल को समझकर, मिथ्या.... मान्यता को छोड़कर, सत्य की पहिचान के लिये यह बात है।

यहाँ पर द्रव्यलिंगी मुनि शुभराग में आत्मा का चारित्र मानता है, यह बात चलती है। पाँच समिति (ईर्या, भाषा, एषणा, आदान निक्षेपण, प्रतिष्ठापन) का भलीभाँति पालन करे, तीन गुप्ति अर्थात् मन-वचन-काय को अशुभ में न जाने दे किंतु वह मोक्षमार्ग नहीं है, संवर-निर्जरा नहीं है, शांति का कारण नहीं है, तथापि अज्ञानवश उसमें आत्मा का हित मानता है, क्योंकि उसकी दृष्टि में फेर है। इसप्रकार ज्ञानी और अज्ञानी की मान्यता में पूर्व-पश्चिम जितना अंतर है।

अनादि-अनंत ज्ञानादि शक्तियों से परिपूर्ण चैतन्यस्वरूप, वह आत्मा है। उससे विरुद्ध वह मिथ्यात्व और पुण्य-पाप है। पुण्य-पाप से संसार ही फलता है, अर्थात् इस लोक में परिभ्रमण करना पड़ता है। लोकसंज्ञा द्वारा स्वरूप में निश्चलदशा और सिद्धपद की प्राप्ति नहीं हो सकती।

एक बार वडिया (सौराष्ट्र) जाते समय तोरी नाम के गाँव में रात्रि को ठहरे, वहाँ के कुछ कृषक जिज्ञासापूर्वक मिलने के लिये आये। उन्होंने कहा कि हमारे पास 'अगाध गति' नाम की एक पुस्तक है; उसका गूढ़ अर्थ हमारी समझ में नहीं आता। उनसे वह पढ़ने के लिए कहा तो उसमें लिखा था कि—दया, दान, व्रत, तप, जाप, नाम स्मरण, भक्ति, पूजा, यात्रा, भगवान की स्तुति आदि सबका फल यहीं है, इस लोक में जो दिखाई देता है, उसी की प्राप्ति होगी, किंतु उससे आत्मा के साथ रहनेयोग्य शांति (धर्म) नहीं मिल सकती। अर्थात् लोग जिसे तथा जिससे धर्म मानते हैं, वह धर्म नहीं है। आत्मशांतिरूप धर्म की तो जाति ही भिन्न है। उसका स्वरूप क्या है? और किसप्रकार प्रगट होता है? यह बात उस पुस्तक में नहीं थी।

यहाँ तो आत्मा और मलिनभावरूप आस्रव—इन दोनों में अनादि से अज्ञान के कारण कर्ता-कर्मबुद्धि है, वह नष्ट करके आत्मा ज्ञाता है, उसको पहिचानकर उसके आश्रय से ही शांति हो सकती है, और वही अपने अधिकार की बात है, यह कहा जा रहा है।

जैसे जल में सेवाल (काई) है, वह जल का स्वरूप नहीं किंतु मल है, उसीप्रकार इस आत्मा में जो भी शुभाशुभराग की वृत्तियाँ उठें—महाव्रतादि का शुभभाव आये, वह भी आस्रव है, मल है;—इसलिये उससे धर्म माननेवाले और मनानेवाले अपनी आत्मा को संसाररूपी गहरे गड्ढे में गिरानेवाले हैं। उनकी प्रत्येक बात सम्यग्दर्शन का नाश करनेवाली है।

धर्म की परीक्षा भलीभाँति अभ्यास द्वारा न करे और संप्रदाय का वेश देखे—बाह्य में मानी हुई क्रिया देखे, वहाँ वंदन-आदर करने लगता है—उसे सत्य का मूल्यांकन नहीं आता। चिदानंदस्वरूप में लीनतारूप श्रद्धा का आनंद और चारित्र का आनंद कैसा होता है, उसकी बात तूने सुनी ही नहीं।

हिंसा, असत्य, चोरी, अब्रह्म, परिग्रह और उसके त्यागरूप अहिंसा आदि शुभभाव, ये दोनों राग की वृत्तियाँ हैं, वे तीव्र और मंद कषाय होने से बंध के कारण हैं, धर्म का कारण नहीं। व्यवहार में पुण्य-पाप का भेद है। निश्चय से मोक्षमार्ग में दोनों का निषेध है। प्रथम प्रयत्न से सत्य-असत्य का निर्णय करना चाहिए। 'तमेव सच्चं' कहकर तत्त्वनिर्णय के बिना अनन्त भव गँवाये हैं।

भगवान ने अहिंसा को धर्म कहा है, 'मा हणो, मा हणो'—ऐसा कहा है। ऐसा विचार करना, वह राग का अंश है। राग-द्वेष की वृत्तियाँ, वह धर्म नहीं किंतु अधर्म है, किंतु उसका अर्थ ऐसा नहीं कि पुण्य=शुभभाव छोड़कर पाप में प्रवर्तन किया जाये। परंतु पुण्य-पाप दोनों संसार हैं, उनसे पार अपना ज्ञानानंदस्वभाव है, उसमें श्रद्धा-ज्ञान और लीनता करनेरूप धर्म है, वह वीतरागभाव है और वही भगवान की कही हुई सच्ची अहिंसा है। 'मा हणो' अर्थात् ज्ञाता-दृष्टा और शांतस्वरूप की रक्षा करो। दूसरे जीवों के प्रति अनुकम्पा, अहिंसा का भाव, वह शुभराग है, ऐसा जानकर, तत्त्वनिर्णय और वीतरागता प्रगट करने का आदेश भगवान ने दिया है। यह त्रैकालिक परमार्थ सत्य है, इसका निर्णय नहीं करता और अकेले व्यवहार को धर्म मानता है। ईर्यासमिति, भाषासमिति, ऐषणा, आदाननिक्षेपण और प्रतिष्ठान समिति का पालन करने का भाव, वह शुभराग है, उसे जो सच्चा धर्म मान बैठे हैं, उनको भगवान ने कहा है कि—यह शुभराग भी मंदकषायरूप अधर्म है, क्योंकि आत्मा ज्ञानानंदमय वीतरागस्वभावी है, उससे विरुद्ध भाव, वह अधर्म है, चैतन्य की जागृति को रोकनेवाला है—ऐसा जानकर सत्यार्थ ऐसे मोक्षमार्ग की श्रद्धा करने को कहा है। पाप भाव करने के लिये नहीं कहा।

रूढ़ि से पुण्य को धर्म कहा हो तो वह कथन असद्भूत व्यवहार से है और उसका प्रयोजन राग का आदर छुड़ाकर वीतरागता का ही आदर करने का है।

पुण्य-पाप दोनों पराश्रित हैं, उनकी अपेक्षारहित आत्मा नित्य ज्ञानानंदस्वभावी है, उसमें श्रद्धा-ज्ञान और लीनता, वह चारित्र है, वह सच्ची समिति है, उसे भगवान ने भूतार्थ धर्म कहा है। ज्ञानी को छट्ठे गुणस्थान तक शुभभावरूप व्यवहार समिति भी होती है किंतु अज्ञानी उस शुभराग में आत्मा का हितरूप धर्म मानता है, चारित्र मानता है, परंतु वास्तव में ऐसा नहीं है, क्योंकि राग तो विरोधीभाव होने से आत्मा के स्वभाव का स्पर्श नहीं करता।

बारह प्रकार का तप—अनशन, ऊनोदर, वृत्ति-परिसंख्यान, रस-परित्याग, विविक्त शय्यासन-एकांत में रहना, कायक्लेश, प्रायश्चित्त, विनय, वैयावृत्त्य, स्वाध्याय, ध्यान और कायोत्सर्ग इनमें धर्मी जीव को तो भेदज्ञानपूर्वक स्वसन्मुखता के बल से जितनी आत्मा के परिणामों की शुद्धि होती है, उतने अंश में संवर, निर्जरारूप धर्म है और जितना राग शेष रहा है, वह पराश्रित-बंधभाव है, अधर्म है, उसको असद्भूतव्यवहारनय से धर्म कहने में आता है। अज्ञानी को सत्य क्या है, उसका किंचित् भी निर्णय नहीं, इसलिए वे कथंचित् आत्मभाव से और कथंचित् शुभराग से भी आत्मा का हित होता होगा—ऐसा मानता है अथवा व्रत-समिति-गुप्ति के राग को ही धर्म मानता है।

भावलिंगी मुनि को संयम के हेतु आहार ग्रहण करने का भाव आता है, वह शुभभाव है, किंतु उससे निचलीदशावाले को आहार लेने का भाव, वह पापभाव है और न लेने का भाव, वह पुण्यभाव है, शुभराग है; पुण्य-पाप दोनों आस्रव हैं, बंध के कारण हैं।

वरसीतप (एक वर्ष तक प्रोषधोपवास) करके उसमें कषाय मंद करे, शुभभाव करे तो पुण्य है। पुण्य को सच्चा धर्म माने तो मिथ्यात्वरूपी महान पाप है। मानादि की पुष्टि लिए तप करे, उसका उद्यापन करना ही चाहिए, नहीं किया तो मेरा तप लंघन माना जायेगा—ऐसा मानकर बड़ाई के लिये उद्यापन करे तो पापबंध होगा। स्त्री को संतुष्ट रखने के लिये धन खर्च करे, वह भी पाप है।

प्रश्नः—कोई तप न करे, शुभ कार्य में पैसा न लगाये, उसकी अपेक्षा जो करते हैं, वे उतने अंश में तो अच्छे हैं न?

उत्तरः—नहीं। क्योंकि उनको हित-अहित क्या है, आत्मा का स्वरूप क्या है, उसका ज्ञान नहीं; इसलिए वह क्रोध-मानादि कषायों के पोषण के लिए ही सब करते हैं, इसलिए अज्ञानी के किसी कार्य को ज्ञानी अच्छा अर्थात् परमार्थ से ठीक अर्थात् वे भाव आत्मा को हितकारी हैं, ऐसा नहीं मानते।

(१) उपवासः—अतीन्द्रिय ज्ञानमय आत्मा में निवास करना, वह उपवास है। परंतु अज्ञानी को निश्चय-व्यवहार होते ही नहीं।

(२) अवमौदर्य तप में चार रोटी खाये तो पाप और दो रोटी खाये तो धर्म हुआ, ऐसा नहीं। आत्मा तो ज्ञान है, रोटी को ग्रहण नहीं कर सकता, त्याग भी नहीं कर सकता, मात्र ऐसा राग कर सकता है। राग को धर्म मानकर मिथ्यात्वरूपी महान पाप कर रहा है, उसकी उसे खबर नहीं। अज्ञानता, वह बचाव नहीं है।

प्रश्नः—व्यवहार से तो पर का कार्य आत्मा से होता है न ?

उत्तरः—ज्ञानी या अज्ञानी व्यवहार से भी पर का कार्य नहीं कर सकता, शरीर की क्रिया नहीं कर सकता, मात्र अभिमान करता है। ज्ञानी को नित्य ज्ञायक हूँ, ऐसे भान में जितने अंश में स्वरूप में एकाग्रता है, वह निश्चय अवमौदर्य तप है और उसी जीव को उस काल में शुभराग भी है, वह व्यवहार तप है। उसकी अज्ञानी को खबर नहीं है।

(३) वृत्तिपरिसंख्यान-(१) अकषाय ज्ञातास्वरूप में विशेष आलम्बन द्वारा आंशिक बुद्धि की वृद्धि होना, वह निश्चय तप और (२) भिक्षा के लिये जाते समय अमुक प्रकार से ऐसी विधि मिले तो ही आहार ग्रहण करना, ऐसी प्रतिज्ञाएँ उसमें होती हैं। वह शुभराग भी हेय है, ऐसा जानकर उसको उपचार तप कहना वह व्यवहार वृत्तिपरिसंख्यान तप है।

(४) रसपरित्याग—छहों रसों में से छह अथवा अमुक रसवाला आहार ग्रहण नहीं करना, ऐसा राग ज्ञानी को भी आता है, तथापि वह आत्मा का चारित्र अर्थात् धर्म है, ऐसा ज्ञानी मानता नहीं, अज्ञानी उसमें धर्म मानता है।

(५) कायक्लेश—दृढ़ आसन से काया को स्थिर रखने का भाव, वह शुभराग है। अज्ञानी को शरीर के प्रति राग की मंदता का भाव आवे परंतु वह शुभभाव है, धर्म नहीं।

(६) विविक्त शय्यासन—एकांतवास में रहना। स्त्री, नपुंसक, पशु जहाँ रहते हों, वहाँ नहीं रहता—ऐसा शुभभाव, वह पुण्य है; धर्म नहीं।

यहाँ पर अज्ञानी के बारह प्रकार के तपरूप शुभराग की बात चलती है। मुनिलिंग धारण कर बारह प्रकार की राग की वृत्तियों में वह निरंतर सावधान रहता है। आत्महित में किंचित् भी सावधान नहीं है।

आत्मा ने परवस्तु को ग्रहण नहीं किया कि छोड़े, किंतु उसको अज्ञानभाव में-राग में कर्तापना की वासना को, मिथ्यात्वभाव को ग्रहण किया है - कि यह मेरा है, मैंने इसका त्याग किया है—इसप्रकार राग में और परवस्तु में कर्तापने की मान्यता है, वही अनंत संसार का मूल कारण है।

महावीर भगवान ने भी तप किया है—१२॥ वर्ष तक तप किया, सुख से निद्रा नहीं ली, सुख से खाया-पिया नहीं। रेती के ग्रास समान कठिन चारित्र का पालन किया, तब उनको केवलज्ञान हुआ, ऐसा अज्ञानी मानता है और मोक्षमार्ग को कष्टदायक-दुःखदायक बतलाता है। परंतु ऐसा नहीं

है—भगवान ने ऐसे तप किये ही नहीं। किंतु बेहद ज्ञानानंदस्वभावी आत्मा में एकाकार रहने के अभ्यास में आहार ग्रहण करने की वृत्ति उत्पन्न नहीं हुई और उसके स्थान में अतीन्द्रिय आनंदरस से भरपूर सरिता बहती थी। इसप्रकार आत्मा के आनंद में रहते थे, उसका नाम तप है।

अज्ञानी अपने माने हुए प्रोषध सहित बहुत उपवास करे, तथापि देह की क्रिया और आहार का मैंने त्याग किया, ऐसे राग के ऊपर दृष्टि होने से उसके उपवास लंघन ही हैं। वह व्यवहार धर्म भी नहीं है।

ज्ञानी को आत्मा में एकाग्र रहने का प्रयत्न करने से अतीन्द्रिय आनंद का ऐसा स्वाद आता है कि समस्त जगत उसको नीरस लगता है, और अंतर में अपूर्व ज्ञानानंद की शांति और उसमें लीनता करे, उसका नाम उपवास है। साथ में अल्प राग रहा, उसको उपचार से, व्यवहार से उपवास कहने में आता है। देह की क्रिया में धर्म, अधर्म या उपवास नहीं है।

कोई कहे देह की क्रिया चाहे जैसी पाप में वर्ते, उसके साथ आत्मा का कोई संबंध नहीं; ऐसी स्वच्छंदता की बातें करनेवाले पापी की यहाँ बात नहीं है, किंतु नव तत्त्वों में आस्रवतत्त्व जो कि बंधन का कारण है, उसको जो संवर, निर्जरारूप धर्म मानते हैं, वह मिथ्यात्व है। उस मिथ्यात्व को छोड़कर यथार्थ प्रतीति करने की बात है।

कहा है कि:—

'आस्रव बंध विभाव करे रुचि आपणी,
भूल्यो मिथ्यावास दोष दे पर भणी।'

प्रभु! मैं अपने आत्मा की प्रभुता को भूलकर आस्रव में-राग की क्रिया में धर्म मानता था किंतु वह अधर्मी ही था। धर्म उससे पृथक् है, उसकी मुझे खबर नहीं थी, ऐसा प्रथम निश्चय करे, निर्णय करे तो सत्य श्रवण किया, ऐसा कहने में आयेगा।

स्वयं को राग की रुचि होने से, मिथ्या उपदेशकों की बात रुचती थी, ऐसा न मानकर विपरीत कथन करनेवाले को दोष देना, वह उचित नहीं।

पहले राग कम करने को कहो—पुण्य बतलाओ—ऐसा माननेवाला मिथ्यादृष्टि है। प्रथम आत्मा में एकत्व और मिथ्यात्वादि आस्रव की क्रिया से विभक्त ऐसे सत्य की बात सुन तो सही। फिर ऐसी सत्य बात अनंत काल में कब मिलेगी?

अनंत बार धर्म के नाम से देह की क्रिया और राग की क्रिया में धर्म मान बैठा। देह, वाणी

की क्रिया और शुभ-अशुभ राग की अपेक्षारहित, पराश्रय अर्थात् व्यवहार के पक्ष के बिना अकेले चैतन्यस्वरूप में श्रद्धा-ज्ञान द्वारा एकाग्र होना ही धर्म है; उससे विरुद्ध, वह अधर्म है।

प्रायश्चित्त, तप में गिना जाता है। अज्ञानी बाह्य में निंदा, गर्हा करता है, क्षमायाचना करता है कि—हे गुरु! मुझे प्रायश्चित्त दो, छोटा चूहा पैर के नीचे आकर मर गया आदि। वह देह की क्रिया के अनुसार पाप मानता है; किंतु अंतर में-भाव में-प्रमाद-कषायशक्ति कितनी है, उसके कार्य अनुसार बाह्य में निमित्तनैमित्तिक हिंसा व्यवहार से मानने में आती है, किंतु वास्तव में अपने भावों में मिथ्यात्व रागादि की उत्पत्ति करना, उसका नाम हिंसा है, उसकी अज्ञानी को कोई खबर नहीं है।

ज्ञानी को व्यवहार प्रायश्चित्त का शुभभाव आता है, परंतु उसको भूतार्थ धर्म नहीं मानता, शुभाशुभ रहित निर्मल ज्ञान में जितने अंश में स्थिरता-शुद्धि वर्तती है, वह निश्चय प्रायश्चित्तरूप धर्म है।

विनय तप में सच्चे देव-शास्त्र-गुरु, भगवान की प्रतिमा के प्रति बहुमान-विनय-नम्रता, वह शुभभाव है, पुण्य है। निमित्त और राग की अपेक्षा रहित आत्मा में ही एकाग्रता से लीन होना, वह निश्चय विनय है, वह धर्म है। वहाँ पर शुभराग को व्यवहार धर्म कहा जाता है।

अज्ञानी का शुभराग, मिथ्यात्वसहित होने से उसमें व्यवहार धर्म का आरोप आता ही नहीं।

प्रश्नः—देव, शास्त्र, गुरु का विनय उसमें पुण्य ही है ? धर्म किंचित् भी नहीं ?

उत्तरः—ज्ञानी धर्मात्मा को ऐसा शुभराग आता है। भूमिकानुसार ऐसा शुभराग आये बिना नहीं रहता। किंतु उसे वह आत्मा को हितकर ऐसा धर्म नहीं मानता; आत्मा में जितनी एकाग्रता, शांति-स्थिरता है, उतना ही धर्म है। रागादि स्वभाव नहीं; औपाधिक भाव है, उसमें धर्म नहीं, तथापि धर्म माने, वही अनंत संसार का मूल कारण मिथ्यात्व का पाप है। अज्ञानी को उसका भान ही नहीं। सच्चे देव, शास्त्र, गुरु के प्रति विनय भक्ति-साधर्मी की सेवा आदि का शुभभाव आता है परंतु सम्यग्दृष्टि उसको आत्मधर्म नहीं मानता, मोक्षमार्ग नहीं मानता। दरिद्रनारायण की सेवा करेंगे, उसका आशीर्वाद प्राप्त हो जाये तो सुखी हो जायेंगे, यह मान्यता मिथ्या है, क्योंकि किसी जीव को संयोग से दुःख नहीं परंतु अपने को भूल जाना और पर के कारण सुख-दुःख मानना, देह में एकताबुद्धि करना, उसका दुःख है। शरीर का सदुपयोग नहीं किया जा सकता—मैं दूसरे को दुःख न देऊँ, मदद करूँ, ऐसा शुभराग अवश्य आता है परंतु वह मोक्षमार्गरूप धर्म नहीं है।

यदि शरीर से धर्म होता हो तो जब उसमें रोग हो, लकवा हो जाये, उस समय आत्मा धर्मरहित हो जायेगा, किंतु शरीर को अच्छा रखना, वह आत्मा के अधिकार में नहीं है। एक स्त्री

को लकवा हुआ है, नाभि से नीचे का सारा शरीर शून्य हो गया है। बहुत प्रेरणा-इच्छा करे किंतु चलने की योग्यता न होने से चला नहीं जाता, किंतु उस स्त्री को आत्मा के धर्म का बहुत प्रेम है, बहुत जागृति है, उसमें शरीर रुकावट नहीं डालता। उससे कहा कि आत्मा ज्ञानानंदरूप है, साक्षीरूप से नित्य ज्ञातास्वरूप है, ऐसा स्मरण करना, स्वसन्मुख ज्ञातापना में धैर्य रखना सच्चा पुरुषार्थ है। उत्तर में उसने खूब हर्ष प्रगट किया। लेकिन जिसे तत्त्वज्ञान का विरोध है, वह तो शरीर में मेरा अधिकार है, मैं पर का कुछ कर सकता हूँ, पुण्य से धर्म होता है—ऐसा मानता ही रहता है, यह मान्यता महान पापदृष्टि है, क्योंकि ऐसा मननेवाला मैं चैतन्य हूँ, ज्ञाता ही हूँ, देहादिरूप नहीं, और पर का कर्ता-भोक्ता, स्वामी नहीं—इसप्रकार सत्य को मानता ही नहीं। परंतु ज्ञातास्वभाव के तिरस्काररूप क्लेश करता है।

देह की क्रिया स्वतंत्र है, तेरे आधीन नहीं, तू तो पुण्य-पाप का भाव कर सकता है, अज्ञान अथवा ज्ञान कर सकता है। दया, दान, व्रत, तप के भाव, वह पुण्य है; धर्म नहीं। धर्म तो अधर्म से रहित आत्मा का निर्मल स्वभाव है। यह बात देह में और राग में एकताबुद्धिवाले को कठिन लगती है।

आत्मा, पर का कुछ भी करने के लिये समर्थ नहीं। कोई कहे कि—रोग के समय तो देह की क्रिया नहीं कर सकता, किंतु निरोग अवस्था में कर सकता है कि नहीं? तो कहते हैं कि—नहीं, पर में कर्तापना तो पर में एकताबुद्धि से संयोग की ओर से देखनेवाला मानता है, किंतु इच्छा द्वारा या ज्ञान से किसी प्रकार से पर का कुछ किया नहीं जा सकता। अज्ञानभाव से स्व-पर के वस्तु स्वभाव को भूलकर, मात्र अपने में, अपने भावों में अज्ञानभाव कर सकता है या तो ज्ञानभाव कर सकता है। पर की क्रिया (पर की अवस्था का उत्पाद-व्ययरूप कार्य) कोई भी नहीं कर सकता, करा नहीं सकता, मोह से भले ही माने।

कोई नम्र पुरुष सेवाभावी हो तो दूसरे लोग उसकी खुशामद करते हैं कि अहो! आप बहुत उपकार करते हैं। दूसरों का भला किया तो वह बात ज्ञानी मानता नहीं, कारण कि कोई जीव पर का भला-बुरा करने में समर्थ नहीं। प्रत्येक जीव स्वतंत्र अपनी शक्ति से परिपूर्ण है। किसी की सहायता मिले तो टिका रहे, ऐसा पराधीन कोई नहीं है।

ज्ञानी दूसरे को संयोग के कारण दुःखी-सुखी नहीं मानते, किंतु उसके अज्ञान अथवा ज्ञान के कारण वह दुःखी या सुखी होता है, ऐसा मानते हैं। ज्ञानी को दूसरों की सेवा करने का शुभभाव आता है, किंतु मैं पर का कुछ कर सकता हूँ—ऐसा नहीं मानता।

वर्तमान संयोग मात्र को देखनेवाले सुधारवादी को यह बात नहीं बैठती, परंतु वस्तु अनादि-अनंत है। है तो उसमें उसकी सर्व शक्तियाँ (गुण) भी अनादि-अनंत हैं। प्रत्येक द्रव्य अपनेरूप से है और पररूप से नहीं है। इसलिए अपने रूप से ध्रुव रहकर नयी-नयी अवस्थारूप से बदलता है। दो तत्त्व नित्य भिन्न हैं। ऐसी प्रत्येक द्रव्य की स्वतंत्र मर्यादा जाने तो स्वयं देह से भिन्न स्वतंत्र सत् पदार्थ है, और शरीरादि भिन्न तत्त्व भी स्वतंत्र सत् परमाणु नाम के पदार्थ हैं, वे भी अपने से स्थिर रहकर बदलते हैं, ऐसा जाने तो सत्य विचार आये कि अहो! प्रत्येक द्रव्य पर से भिन्न और अपनी शक्ति से परिपूर्ण स्वतंत्ररूप से वर्तता है, तो फिर वह किसी द्रव्य को किसी दूसरे का कर्ता-भोक्ता व स्वामी कैसे माने?

लोक में व्यवहार से कर्तापने का कथन आता है, किंतु वह कहनेमात्र है। पर का नहीं किया जा सकता, ऐसे धर्म जिज्ञासु जीव को प्रथम से ही निर्णय करना चाहिये।

कायोत्सर्ग तप का भेद है। शरीर को एक स्थान पर रोक रखना, वह कायोत्सर्ग नहीं है। मैं शरीर रोक ही नहीं सकता, देह तथा सर्वप्रकार के राग से भिन्न त्रिकाल ज्ञायक हूँ—ऐसा भेदज्ञान करके एकाग्र होऊँ—ऐसे विकल्प से छूटकर अतीन्द्रिय आनंद में एकाग्र होने से देह की ममता का त्याग हो जाता है, उसका नाम कायोत्सर्ग है। परंतु परसंबंधी राग आये, विकल्प उठे, वह धर्म नहीं है, तथापि उसको भी कायोत्सर्ग कहना, वह असद्भूत उपचरित व्यवहारनय का कथन है।

स्वाध्याय-पृच्छा, अनुप्रेक्षा, आम्नाय और धर्म कथा का भाव, वह पुण्य है; धर्म नहीं। अतीन्द्रियज्ञान में जितनी लीनता हो, स्वसन्मुख जागृति द्वारा जितनी शांति हो, वही धर्म है, स्वाध्याय है।

संयोगदृष्टि और अतीन्द्रिय ज्ञानमय स्वभावदृष्टि में महान अंतर है।

'आनंद पूछे परमानंद ने, माणसे माणसे फेर;
एक नाणा नाख्ये न मले, एक तांबियाना तेर!'

ध्यान—निर्विकल्प भेदज्ञान ही स्वद्रव्य के आश्रयरूप ध्यान है; उसके बिना मन में एकाग्रता करे और माने कि—मैं ध्यान करता हूँ, मैं ऐसा हूँ—इत्यादि विकल्पों में ध्यान माने, वह मिथ्यादृष्टि है। सामान्य बुद्धिवान को तत्त्वज्ञान में रुचि नहीं होती; अपने आप विचार आगे नहीं बढ़ते। प्रमाद में ध्यान मानता है। इसप्रकार अनादि से अज्ञानी का ध्यान अज्ञानचेतना में होता है। आत्मा का ध्यान निश्चय सम्यग्दर्शन के बिना नहीं हो सकता।

मोक्षस्वभाव का ग्रहण और संसार का त्याग

आत्मा में अनंत अपूर्व पुरुषार्थ से केवलज्ञान प्रगट करने का प्रारंभ सम्यग्दर्शन से ही होता है। वह प्रारम्भ पूर्णता के लक्ष्य से होता है। पराश्रयरहित पूर्ण ज्ञानानंदस्वभावी हूँ—ऐसा निश्चय होने पर भी चारित्र में अस्थिरता से पुण्य-पाप की वृत्तियाँ उठती हैं किंतु दृष्टि में उनका निषेध वर्तता है। पर में इष्ट-अनिष्टपना मानकर अटकने का मेरा स्वभाव नहीं है। एकरूप असंगपने से जानना, वह मेरा स्वभाव है, ऐसा ज्ञानी मानता है।

जिसप्रकार दर्पण की निर्मलता में अग्नि, बर्फ, विष्टा, सुवर्ण, पुष्पादि झलकते हैं, तथापि दर्पण को उनसे कुछ विकृति नहीं होती। अनेक वस्तुएँ अनेकरूप से दिखाई देती हैं, वह दर्पण की निर्मलता है, उपाधि नहीं है; उसीप्रकार मेरे ज्ञानदर्पण की निर्मलता में परपदार्थ ज्ञात होते हैं; लेकिन वे आत्मा में गुण-दोष उत्पन्न करने की सामर्थ्य नहीं रखते।

ज्ञायाकस्वभावी आत्मा किसी संयोग में, किसी भी क्षेत्र-काल में अपने स्वभाव को छोड़नेवाला नहीं है। ध्रुव स्वभाव में न्यूनता, विभाव और संयोग नहीं होते। अखण्ड स्वभाव के आश्रय से निर्मल पर्याय प्रगट होती है। नवतत्त्वों की श्रद्धा आदि का शुभ विकल्प आता है, वह मोक्षमार्ग में सहायक नहीं है। बाह्यदृष्टि-व्यवहारदृष्टि से देखने पर निमित्तादि के भेद दिखलाई देते हैं, अंतर्दृष्टि में अभेद ज्ञायकस्वरूप असंग आत्मा दिखाई देता है, उसके आश्रय से ही मोक्षस्वभाव का ग्रहण और बंधन के कारणरूप आस्रव का त्याग होता है।

जितने अंश में स्व से च्युत होकर पर का आश्रय करता है, उतने अंश में शुभाशुभभाव होते हैं, उनसे रहित त्रिकाली एकरूप ध्रुव ज्ञायकभाव को आत्मा कहा है। मलिन आस्रवों को आत्मा नहीं कहा। जिसे पूर्ण स्वतंत्र ज्ञायकस्वभाव का माहात्म्य आया, उसे सांसारिक मान-बड़ाई का भाव अंतर से छूट जाता है। शुद्धात्मतत्त्व की रुचि होते ही संसार की रुचि छूट जाती है, उसे देहादि के संयोग में महत्ता दिखाई नहीं देती और अनित्य स्वांग देखकर वह भयाकुल नहीं होता। त्रिकाल ज्ञायक के लक्ष्य से अहंकार-ममकार और पराश्रय का स्वीकार करनेवाली निमित्ताधीन दृष्टि जिसने छोड़ दी, उसने संसारभाव को छोड़कर पूर्ण स्वतन्त्र मोक्षस्वभाव का ग्रहण किया है।

(श्री समयसार, गाथा १३ के प्रवचनों से)

वीतराग को पक्ष नहीं

सर्वज्ञ वीतरागदेव ने जिसप्रकार वस्तु का द्रव्य-गुण-पर्याय से स्वतंत्र स्वभाव कहा है, उसे निश्चय-व्यवहारनय के विभाग द्वारा युक्ति, आगम, गुरुगम और स्वानुभव से जानना चाहिये। यदि ऐसा नहीं जानता तो वह जीव चाहे जैसा होशियार कहलाता हो, शास्त्र में पंडित, विद्वान माना जाता हो, तथापि वह वीतराग के मार्ग में नहीं है। वीतराग को पक्ष नहीं है, वीतराग को वंश परम्परा नहीं रखना है, जो प्रत्येक की स्वतंत्रता घोषित करे वही वीतराग है। पुण्य से धर्म होना माने, दूसरे के द्वारा किसी का भला-बुरा होना माने, दूसरे लोग मेरा मानें तो मेरा कल्याण होगा, आशीर्वाद से सुखी हो सकते हैं—ऐसा माननेवाला आत्मा को पराधीन आशा तृष्णावंत और असमर्थ मानता है।

अज्ञानता के कारण अपनी अवस्था में अल्पज्ञता एवं अपने को पर के साथ संबंधवाला, अनेक भेदरूप, पर का कर्ता, भोक्ता तथा स्वामी मानता था; इसलिये मैं शुभाशुभराग का कर्ता होकर विकाररूप हूँ, पुण्य, शुभराग करने से धर्म होगा—इसप्रकार अपने को मिथ्यारूप से अन्यथा मानता था। किंतु जब सर्वज्ञ वीतराग का स्वरूप जाना, और पर में व रागादि में कर्ता-भोक्ता-स्वामित्वरूप मिथ्यात्व का पक्ष छोड़कर शुद्धनय द्वारा स्वाश्रित अपने निरालंबी ज्ञानस्वभाव का स्वीकार करने से जड़ व चेतन का स्वतंत्र स्वरूप भिन्न-भिन्न अनुभव में आया, वहाँ त्रिकाली ज्ञानस्वरूप परिपूर्ण ज्ञानानंदरूप से नित्य ध्रुव रहनेवाला, सो मैं हूँ और मिथ्यात्व कषाय शुभाशुभभाव, यह सब विपरीत भाव हैं; मेरा स्वरूप नहीं है। इसप्रकार भेदज्ञान के बल से, अपने असली ध्रुवस्वरूप की श्रद्धा द्वारा श्रद्धा में से सर्व विभावों का नाश किया। निर्विकल्प श्रद्धा के विषय में किसी भेद-विकल्प का अनुभव नहीं है, स्वीकार नहीं है।

ज्ञानी को एकरूप अविकारी पूर्ण स्वभाव की श्रद्धा का बल है। एकाग्र-स्थिर नहीं रह सकता, वहाँ पुण्य-पाप की वृत्तियों में (छोड़ने की बुद्धि से) रुक जाता है, तथापि उनमें धर्म नहीं मानता।

सैद्धांतिक चर्चा

लेख नंबर ५ गतांक से चालू

यह लेखों का संकलन सन् १९६२ श्रावण मास में जैन शिक्षणवर्ग सोनगढ़ में चलते थे, तब से किया हुआ है। माननीय श्री रामजीभाई ने उस समय स्वयं तैयार करके शिक्षणवर्ग में इस विषय को शास्त्राधार सहित, नयविभाग सहित समझाया था, शिक्षणवर्ग वालों की माँग होने से यह लेखमाला चालू की है। जिनको अपूर्व तत्त्वज्ञान की जिज्ञासा होगी, संसार-भव-भीत होगा, यथार्थता—वीतरागता को ही ग्रहण करना चाहते हैं, वे मध्यस्थता से और धैर्य से इस लेखमाला को पढ़कर सच्चे समाधान को प्राप्त करेंगे।

प्रश्न १ के उपसंहाररूप कितनेक प्रश्नोत्तरादि, ज्ञेय का स्वरूप

२००—**प्रश्नः**— ज्ञेयरूप भविष्य की पर्याय अपना स्वरूप, तात्कालिकरूप से ज्ञान को अर्पण करती है तो उपादान और निमित्त, दोनों भी अपने स्वरूप को अर्पण करते हैं कि नहीं ?

उत्तरः—(१) अवश्य करते हैं, कारण कि कार्यरूप भूत-भावी पर्याय का तात्कालिक ज्ञान होता है, उसका कारण वह भी निश्चित पदार्थ है, वे अपना स्वरूप तात्कालिकपणे से ज्ञान को न अर्पण करें तो वे ज्ञेय नहीं रहते।

(२) उपादान और निमित्त, दोनों हर समय भूत, वर्तमान और भविष्य का अपना स्वरूप, अनादि से अनंत काल तक ज्ञान को अर्पण करते रहते हैं, इसलिये वह ज्ञान के प्रति हरसमय '**नियत**' हैं, ऐसा ज्ञेय का स्वरूप, श्री प्रवचनसार, गाथा ३७-३८ और ३९ में कहा है। ज्ञेय की ऐसी अद्भुत ज्ञेयत्वशक्ति जो नहीं मानते, वे ज्ञेय के स्वरूप से अज्ञात हैं। भविष्य की जो पर्यायें, निमित्त की अपेक्षा से नैमित्तिक हैं, वे नैमित्तिकपर्याय और उनका निमित्त, दोनों अतीत हों, वर्तमान हों या अनागतृ हों; वे सब अपना सर्वस्वस्वरूप, अकंपपने ज्ञान को न अर्पे और ज्ञान के प्रति तात्कालिक की माफिक '**नियत**' न हो—ऐसा माना जाये तो ज्ञेय का स्वरूप, जैसा भगवान कुन्दकुन्दाचार्य ने कहा है—ऐसा वे मानते ही नहीं।

२०१—**प्रश्नः**—धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाश, काल और सिद्ध भगवान की

पर्याय को 'एकांतरूप क्रमबद्ध' माने तो ऐसे जीव की मान्यता सम्यक् है या मिथ्या ?

उत्तर:—ऐसी मान्यता मिथ्या है क्योंकि यह मिथ्या एकांत हुआ। सम्यक् अनेकांत में वे पर्यायें स्व से क्रमबद्ध हैं और पर से क्रमबद्ध नहीं हैं अर्थात् अक्रमबद्ध हैं - ऐसा मानना चाहिये। उसको पर से अक्रमबद्ध कहने से कोई भी पर्याय अनिश्चित है, अनियत है या आगे-पीछे होती है - ऐसा नहीं समझना चाहिए। छह द्रव्यों की प्रत्येक पर्याय (शुद्ध-अशुद्ध) अपने निश्चित-नियत स्वकाल में ही होती है, अन्य काल में नहीं होती—ऐसा सम्यक् अनेकांत है। सम्यक् एकांत से छह द्रव्यों की सब पर्यायें (शुद्ध-अशुद्ध) क्रमबद्ध ही होती है। (अन्यथा नहीं होती।)

२०२—**प्रश्न:**—'अशुद्ध संसारी जीवों के तथा अशुद्ध पुद्गलों के उपादान (योग्यता) अशुद्ध है, विकृत है; इसलिये उनका परिणमन अनियत, अनिश्चित रहा करता है'—ऐसा कथन आगमोक्त है ?'

उत्तर:—(१) वह कोई आगम कथन नहीं है, न्याय से भी बिलकुल असत्य है, कोई भी परिणमन अनियत, अनिश्चित हो **तो वह 'ज्ञेय' नहीं है और जो 'ज्ञेय' नहीं है, वह जगत का पदार्थ भी नहीं है।**

(२) शुद्धपर्याय हो या अशुद्धपर्याय हो, भूत हो, वर्तमान हो या भविष्य हो; वे अपना स्वरूप हरसमय अनादि से अनंत काल तक **ज्ञेय होने से** अकम्पपने तात्कालिकरूप से ज्ञान को अर्पण करते ही हैं; तो अनिश्चितपना रहा कहाँ ? भावी जो पर्याय, जिससमय होनेवाली है, उस पर्याय का परिपूर्ण स्वरूप, ज्ञान के प्रति '**नियत**' ही है, कभी भी ज्ञान के प्रति अनियत नहीं हो सकती। उस पर्याय को अनियत, अनिश्चित किसप्रकार कहा जावे ? नहीं कहा जा सकता।

(३) 'कब, कैसा निमित्त मिलेगा, कैसी उसकी प्रतिक्रिया होगी यह आदि बात अनिश्चित रहती हैं'—ऐसा कोई आगम कथन नहीं है, यह ज्ञेयस्वरूप से विरुद्ध है। निमित्त की कोई भी प्रतिक्रिया ऐसी नहीं होती जो उपादान के कार्य को विलक्षण बनाये। निमित्त से विलक्षणता माननेवाले निमित्त से (पर-पदार्थ से) लाभ-नुकसान मानते हैं और भगवान कुन्दकुन्दाचार्यकृत श्री समयसार, गाथा १०८ और श्री प्रवचनसार, गाथा ८३ से विरुद्ध मानते हैं, वे दो-क्रियावादी हैं। भगवान का ज्ञान, कोई में हस्तक्षेप नहीं करता। किंतु ज्ञान में जैसा ज्ञेय का स्वरूप, तीनों काल का आया है, उससे विरुद्ध ज्ञेय का परिणमन हो—ऐसा मानना, वह ज्ञेय के स्वरूप की और ज्ञान-ज्ञेय के परस्पर निमित्त-नैमित्तिक संबंध की अज्ञानता ही है। भगवान विद्यानंदस्वामी ने अपने 'पात्र-

केसरी' नाम के स्तोत्र में कहा है कि सब पर्याय का परिणमन, **भगवान के ज्ञान के वश ही होता है।** चक्रवर्ती की आज्ञा का भंग तो हो, किंतु भगवान के ज्ञान की आज्ञा का भंग हो—ऐसा ज्ञेय होता ही नहीं। भगवान, ज्ञान-चक्रवर्ती हैं, उसका ज्ञान से विरुद्ध कोई भी ज्ञेय का परिणमन हो जावे और कोई अनिश्चित होवे—ऐसा मानना, वह ज्ञेयस्वरूप की अवज्ञा है। ऐसी मान्यतावाले अरहंत के मत के बाहर हैं। इतना ही नहीं, किंतु वह मान्यता भगवान कुन्दकुन्दाचार्य से, श्री प्रवचनसार की गाथा ३७-३८-३९ और दोनों आचार्यों की टीका से विरुद्ध है।

२०३—**प्रश्नः**—अनिश्चित वस्तु का अर्थ क्या?

उत्तरः—अनिश्चित ऐसा कोई द्रव्य, कोई गुण और कोई पर्याय का धर्म है ही नहीं। अथवा छद्मस्थ के ज्ञान में न आवे, इसलिये अनिश्चित है—ऐसा मानना ठीक नहीं है। कोई पदार्थ-गुण, पर्याय, उपादान, निमित्त-नैमित्तिक, अनिश्चित हो जावे—ऐसा बनता नहीं। जिन छद्मस्थों को अवधिज्ञान हुआ है, वे अपने विकास की मर्यादा के अनुसार पुद्गल की भविष्यपर्यायों को, उसका उपादान और निमित्तकारणों को तथा जीव के भविष्य में होनेवाले औपशमिक, क्षायोपशमिक और औदायिकभावों को बराबर जानते हैं। उनके ज्ञान में वे ज्ञेय अनिश्चित नहीं है। मनःपर्ययज्ञान में भी भविष्य की बात बराबर आती है। उसके ज्ञान में सब ज्ञेय निश्चित ही है। केवलज्ञानी के ज्ञान में भी कोई पदार्थ अनिश्चित नहीं है। श्रुतज्ञानी के ज्ञान के विषय में भी उसका ज्ञेय अनिश्चित हो—ऐसा होता ही नहीं है। लेकिन अपने ज्ञान का विकास कम होने से जानने में नहीं आते, इसलिये वे अपने ज्ञान के विकास की वृद्धि करके केवलज्ञान प्राप्त करने का प्रयत्न करते हैं। अज्ञानी उसको अनिश्चित माने तो वह उसके ज्ञान का दोष है। किसी भी वस्तु को उसके स्वद्रव्य-गुण और पर्याय से अस्ति और पर से नास्ति मानना और फिर भी उसको '**अनिश्चित**' विशेषण लगाना, परस्पर विरुद्ध है; अनिश्चित विशेषण लगाने से '**अनध्यवसाय**' नाम का और '**अप्रतिपत्ति**' नाम का दोष आता है।

२०४—ज्ञेय का स्वरूप, सम्यग्ज्ञान ही जान सकता है; ज्ञेय का स्वरूप, ज्ञान के अलावा दूसरा और कौन जान सकता है? उसका कथन दिव्यध्वनि के अलावा दूसरा कौन यथार्थपने कर सकेगा? **जैनागम अनादि से प्रवाहरूप चला आ रहा है। दिव्यध्वनि भी अनादि प्रवाह से चली आ रही है। आचार्य का कथन भी अनादि प्रवाह से चला आ रहा है। श्रुतकेवली भी अनादि प्रवाह से चले आ रहे हैं। सौ इन्द्रों भी अनादि प्रवाह से चले आ रहे हैं।** देखिये, पंचास्तिकाय, गाथा १ तथा

श्री समयसार गाथा १ की टीका; (जिसमें परमागम को अनादिनिधन कहा है तथा सिद्ध भगवान, सर्वज्ञ भगवान, तथा श्रुतकेवली को भी अनादिनिधन कहा है।) अज्ञानी भी अनादि प्रवाह से चले आ रहे हैं, वह सब ज्ञेय का स्वरूप सर्वज्ञ उपज्ञ है।

(देखिये, श्री प्रवचनसार, गाथा ३४ की टीका)

२०५—**प्रश्नः**—श्री प्रवचनसार की गाथा ३७ में ऐसा बताया कि सब भूत, भावी और वर्तमान पर्यायें केवलज्ञान में तात्कालिकरूप से वर्तती हैं, यह बात तो समझ में आई, किंतु मूल गाथा में '**विसेसदो**' शब्द है, उसका श्री जयसेनाचार्य ऐसा अर्थ करते हैं कि स्वकीय-स्वकीय प्रदेश, काल, आकार आदि भेदों के साथ संकर-व्यतिकर दोष रहित है, उसका क्या आशय है ?

उत्तर - (१) भूत, भावी और वर्तमान पर्यायों का स्वकीय-स्वकीय प्रदेश—इसका अर्थ, पुद्गल के संबंध में ऐसा समझना कि जितने-जितने परमाणु और जितने-जितने स्कंधों और जितने-जितने प्रदेशों की संख्या अर्थात् प्रत्येक समय में बँधनेवाले कर्मों की संख्या, निर्जरनेवाले प्रदेशों की संख्या और जितने-जितने पुद्गलों का जीव के साथ संबंध रहे। उन सब ज्ञेय का ज्ञान, भगवान को केवलज्ञान हुआ, तब से हो जाता है, उनमें कोई भी अनिश्चित रहता नहीं है और यदि रहे तो केवलज्ञान नहीं होगा, वह छद्मस्थ का ज्ञान होगा। इसप्रकार कर्म-निर्जरा के प्रदेशों का ज्ञान, केवली को प्रथम से होता है, ज्ञेय का स्वरूप इसप्रकार है।

(२) भूत, भावी और वर्तमान पर्यायों का स्वकीय-स्वकीय काल—इसका अर्थ—जो पर्याय जिस समय में होनेवाली है, उसका काल निश्चित है, काल अनिश्चित रहे—ऐसा कभी बनता नहीं है, इससे सिद्ध होता है कि अकालमृत्यु का काल, मोक्ष में जानेवाले जीव का काल, कर्म-निर्जरा का काल, केवलज्ञान हुआ, वहाँ से हो जाता है और अनंतकाल तक रहता है; इसलिये कोई भी बातें अनिश्चित रहती नहीं हैं, यदि अनिश्चित रहें तो जब वे पर्यायें प्रगटें, तब जानने में आवे, उस समय तक वह अनिश्चितरूप से ज्ञात होवे तो केवलज्ञान अनादि से अनंत काल तक सबको जानते हैं, यह बात सिद्ध नहीं होगी। **क्योंकि केवलज्ञानी तो अनादि से प्रवाहरूप चले आ रहे हैं।** अकालमृत्यु-कर्म निर्जरा, मोक्ष, सबका काल निश्चित ही है।

(३) भूत, भावी और वर्तमान पर्यायों का आकारः—'आकार' का अर्थ 'स्वरूप' होता है। प्रत्येक स्कंधों की और परमाणु की पर्याय का क्या स्वरूप होगा, वह भी उसीप्रकार परिपूर्णरूप से ज्ञेय होने से जानने में आता है।

एक-एक द्रव्य में अनंत गुण हैं, प्रत्येक गुण की समय-समयवर्ती पर्यायें होती हैं, एक गुण की भूत, भावी और वर्तमान पर्यायें, अनादि-अनंत हैं तथा एक-एक पर्याय में शक्ति के अंश अनंत होते हैं, उन सर्व ज्ञेय को **एक समय में पृथक्-पृथक् जान लेना ही केवलज्ञान का कार्य है।** यह महिमा निर्मलज्ञान की ही है, क्षायिकज्ञान ही ऐसा शक्तिशाली ज्ञान है। (देखिए, श्री प्रवचनसार, गाथा ३९ की टीका, सूरत से प्रकाशित, पृष्ठ १९५)

सब पर्यायों का स्वरूप भी जब से केवलज्ञान है, तब से केवलज्ञान में है, कर्म की निर्जरा और मोक्ष (मोक्ष में जानेवाले जीव का); ज्ञेय होने से केवलज्ञान में अनादि से है। केवली भगवान अनादि प्रवाह से चला आ रहा है। इससे सिद्ध हुआ कि समस्त ज्ञेय, अनादि प्रवाह से चला आ रहा है, और अनंत काल तक चलेगा।

२०६—**प्रश्नः**—'संकर-व्यक्तिकर' दोष का क्या अर्थ होता है?

उत्तरः—(१) संकर-व्यक्तिकर दोष की व्याख्या, श्री देवसेनाचार्यकृत आलापपद्धति में से पढ़ लेवें।

(२) संक्षेप में इसका इतना ही अर्थ होता है कि एक पर्याय का, दूसरी पर्याय के साथ ज्ञेयरूप से संकरता (एकता) नहीं होती, यदि संकरता हो जावे तो संकर दोष लागू पड़ता है।

(३) पर्यायों का परस्पर विषय-गमन होने में आवे तो व्यक्तिकर दोष जावेगा, लेकिन ऐसा होता नहीं है, संकर-व्यक्तिकर दोष लागू होने पर सर्व-शून्य दोष लागू पड़ते हैं।

(४) इससे सिद्ध हुआ कि भविष्य की कोई भी पर्याय, वर्तमान में प्रगट न हो, तब तक अनिश्चित रहे, जब वह वर्तमान में प्रगट होवे, तब उसका उपादान-निमित्त, निमित्त-नैमित्तिक, यह सब केवली के ज्ञान में आवेगा—ऐसा मानना, वह केवलज्ञानी को छद्मस्थ (अपूर्ण-ज्ञानी) मानने के समान है और ज्ञेय के ज्ञेयरूप से नहीं मानने के समान है।

२०७—**प्रश्नः**—श्री प्रवचनसार की गाथा ३७ में '**विसेसदो**' शब्द का भगवान श्री अमृतचंद्राचार्य ने क्या अर्थ किया है?

***उत्तरः*—यह ज्ञेयस्वरूप है**—'××क्रमपूर्वक तपती हुई स्वरूप-संपदावाली (एक के बाद दूसरी प्रगट होनेवाली) विद्यमानता और अविद्यमानता को प्राप्त **जो जितनी पर्यायें हैं, वे सब तात्कालिक (वर्तमानकालीन) पर्यायों की भाँति अत्यंत मिश्रित होने पर भी सब पर्यायों के विशिष्ट लक्षण स्पष्ट ज्ञात हों, इसप्रकार एक क्षण में ही ज्ञानमंदिर में स्थिति को प्राप्त होती हैं।'**

'**विसेसदो**' शब्द बड़ा उपयोगी है क्योंकि भविष्य काल की स्वरूप-संपदा विशिष्ट लक्षण द्वारा ज्ञान में पहले से ही आ जाती है, इसप्रकार बताकर ज्ञेय का स्वरूप, ज्ञान-मंदिर में प्रविष्ट हो जाने का है-यह बतलाया है। इसप्रकार ज्ञेय का स्वरूप बतलाया है।

२०८—**प्रश्नः**—श्री प्रवचनसार की गाथा ३८ में 'असद्भूतपर्याय, ज्ञान-प्रत्यक्ष होती है'—ऐसा लिखा, उसका क्या अर्थ टीकाकार ने किया है ?

उत्तरः—उसका अर्थ निम्न प्रकार से किया है:—

(१) 'पर्यायमात्र को यदि ज्ञान, अपनी निर्विघ्न विकसित अखंडित प्रतापयुक्त प्रभुशक्ति के द्वारा बलात् अत्यंत आक्रमित करे (प्राप्त करे); तथा वे पर्यायें, अपने **स्वरूप-सर्वस्व को अक्रम से** अर्पित करें (एक ही साथ ज्ञान में ज्ञात हों); इसप्रकार उन्हें अपने प्रति नियत न करे (अपने में निश्चित न करे, प्रत्यक्ष न जाने) तो उस ज्ञान की दिव्यता क्या है ? इससे (यह कहा जाता है कि) पराकाष्ठा को प्राप्त ज्ञान के लिए यह सब योग्य है।'

(२) इसमें 'अक्रम' शब्द बड़ा उपयोगी है, भविष्य की पर्याय जब तक प्रगट न होवे, तबतक अनिश्चित रहे और प्रगट होवे, तब ज्ञान में ज्ञात हो तो क्रम हुआ, अक्रम नहीं हुआ। केवलज्ञान अपने प्रति ज्ञेय को नियत न करे - ऐसा बनता नहीं है।

(३) इस गाथा में ज्ञेय के स्वरूप की अद्भुत शक्ति और ज्ञान की अद्भुत शक्ति बतलाई है, साथ ही ज्ञान की पराकाष्ठा क्या हो सकती है ? वह भी बतलाई है, ज्ञेय में वर्तमान पर्याय प्रगट न हो, तबतक वह ज्ञान के प्रति अनिश्चित रहे, तो ज्ञान की अपनी अखंडित प्रतापयुक्त अद्भुत-शक्ति किसप्रकार कही जावे ? ज्ञान की पराकाष्ठा किसप्रकार कह सके ? इतना ही नहीं, **ज्ञेय स्वरूप की, ज्ञेयत्व की, अद्भुत शक्ति कहाँ रही ?** अर्थात् प्रमेयत्वगुण की अद्भुत शक्ति नहीं रही।

(४) श्री प्रवचनसार की गाथा ३८ और ३९, दोनों की टीकाओं में भविष्य का ज्ञेय नियत अर्थात् निश्चित है, स्थिर है—ऐसा स्पष्टरूप से बताया है; इसलिये कोई भी भविष्य की विकारी पर्याय को अनिश्चित मानना, वह गम्भीर भूल है और भगवान के ज्ञान में प्रत्यक्ष स्पष्ट नहीं आया - ऐसा गाथा ३९ की टीका पर से सिद्ध होगा। भविष्य की विकारी पर्यायें प्रत्यक्ष नहीं जानने में आवे—ऐसा मानना निज सर्वज्ञशक्ति का भी अनादर है।

२०९—**प्रश्नः**—श्री प्रवचनसार की गाथा २०० **ज्ञेयाधिकार की टीका** में कहा है कि 'ज्ञेय-ज्ञायक लक्षण संबंध की अनिवार्यता के कारण ज्ञेय-ज्ञायक को भिन्न करना अशक्य होने से

विश्वरूपता को प्राप्त होता हुआ भी जो (शुद्धात्मा) सहज अनंत शक्तिवाले ज्ञायकस्वभाव के द्वारा एकरूपता को नहीं छोड़ता'—इसका क्या अर्थ है ?

उत्तरः—(१) इसका अर्थ यह है कि ज्ञेय और ज्ञायक का स्वरूप भिन्न होने पर भी ज्ञेय-ज्ञायक का संबंध भिन्न करना अशक्य है, संस्कृत में भी उसके लिए यह शब्द कहे हैं—'**ज्ञेयज्ञायकलक्षणसंबंधस्याऽनिवार्यत्वेनाशक्यविवेचनत्वात्।**'

(२) यह गाथा ज्ञेय का स्वरूप बताने के लिये है, जो कोई भी पर्याय अनिश्चित हो और जब प्रगट होवे, तब निश्चित होती है, ऐसा मानने पर वह ज्ञेय नहीं रहती है, यह बातें आगे स्पष्ट की गई हैं। यहाँ पर तो विशेष यह कहा गया है कि ज्ञान और ज्ञेय का संबंध भिन्न करना अशक्य है। ज्ञान में ज्ञेयों की सब पर्यायें अनादि से अनंत काल तक की समा गई हैं और अनंत काल तक रहेंगी, ऐसा मानना, वह ज्ञान और ज्ञेय के परस्पर निमित्त-नैमित्तिक स्वरूप का यथार्थ ज्ञान है। भविष्य की अशुद्धपर्याय, अनिश्चित हो (और जब प्रगट हो, तब निश्चित होवे), तो ज्ञान और ज्ञेय का 'शक्य-विवेचन' हो गया, फिर अशक्य-विवेचन रहा कहाँ ?

२१०—**प्रश्नः**—इसीप्रकार अन्य कई जगह पर आया है ?

उत्तरः—श्री प्रवचनसार, गाथा ४९ में आया है, वह निम्न प्रकार है:—

'अब, इससे यह निश्चित होता है कि सर्व के ज्ञान से आत्मा का ज्ञान और आत्मा के ज्ञान से सर्व का ज्ञान (होता है) और ऐसा होने से, आत्मा ज्ञानमयता के कारण स्वसंचेतक होने से, ज्ञाता और ज्ञेय का वस्तुस्वरूप से अन्यत्व होने पर भी प्रतिभास और प्रतिभास्य मानकर अपनी अवस्था में अन्योन्य मिलन होने के कारण (ज्ञान और ज्ञेय, आत्मा की ज्ञान अवस्था में परस्पर मिश्रित-एकमेकरूप होने से) उन्हें भिन्न करना, अत्यंत अशक्य है, इसलिये मानों वे सब कुछ आत्मा में प्रविष्ट हो गये हों; इसप्रकार प्रतिभासित होता है—ज्ञात होता है। (आत्मा ज्ञानमय है, इसलिये वह अपने को अनुभव करता है-जानता है; और अपने को जानने पर समस्त ज्ञेय ऐसे ज्ञात होते हैं, मानों वे ज्ञान में स्थित ही हों क्योंकि ज्ञान की अवस्था में से ज्ञेयकारों को भिन्न करना अशक्य है) यदि ऐसा न हो तो (यदि आत्मा सबको न जानता हो तो) ज्ञान के परिपूर्ण आत्मा संचेतन का अभाव होने से परिपूर्ण एक आत्मा का भी ज्ञान सिद्ध न हो।'

इसमें भी संस्कृत में 'अत्यन्त अशक्य-विवेचनात्वात्' ऐसा शब्द प्रयोग किया है। यहाँ भी ज्ञेय और ज्ञान का, ज्ञान और ज्ञेय का परस्पर निमित्त-नैमित्तिक संबंध सिद्ध किया है।

२११—**प्रश्नः**—'अत्यंत अशक्य विवेचन' कहने का क्या आशय है ?

उत्तरः—ज्ञान, ज्ञेय में कुछ भी हस्तक्षेप नहीं करता, फिर भी ज्ञान में जिसप्रकार की पर्याय जानने में आई, वैसी ही भविष्य में पर्याय होगी। ज्ञान और ज्ञेय के बीच का अनादि-अनंत परस्पर निमित्त-नैमित्तिक, उपादान-निमित्त का संबंध बताते हैं—ऐसा मानने में न आवे तो बड़ा विप्लव हो जावे क्योंकि ज्ञान, एक प्रकार का हुआ, ज्ञेय, दूसरे प्रकार से भविष्य में परिणमे और भविष्य में एक प्रकार से परिणमन हुआ और पूर्व में उसे दूसरे प्रकार से जानने में आया - ऐसा कभी भी बनता नहीं है।

ज्ञान के ज्ञेयभूत द्रव्य, आलम्बन अर्थात् निमित्त हैं; यदि ज्ञान, ज्ञेय को न जाने तो ज्ञान का ज्ञानत्व क्या रहा ? **ज्ञेय का ज्ञान, आलम्बन अर्थात् निमित्त है।** यदि ज्ञेय, ज्ञान में ज्ञात न हो तो ज्ञेय का ज्ञेयत्व क्या हुआ ? (देखिये, श्री प्रवचनसार, गाथा ३७, पृष्ठ ४३ का फुटनोट)

ज्ञान का स्वरूप

२१२—**प्रश्नः**—श्री समयसार की गाथा १४३ में केवलज्ञान का स्वरूप, विश्व का साक्षीपना, निरंतर प्रकाशमान, सहज, विमल, सकल, केवलज्ञान के द्वारा केवली भगवान सदा स्वयं ही विज्ञानघन हुआ है; उसमें एक-एक शब्द का क्या अर्थ है ?

उत्तरः—'भविष्य की जो विकारी पर्याय (प्रगट होने के पूर्व) अनिश्चित है, इसलिये ज्ञान में अनिश्चितरूप से ज्ञात है और पीछे वर्तमान में परिपूर्णरूप से आती है।'—ऐसा मानने से ज्ञान का निरंतर प्रकाशमानपना न रहा और अंतरवाला प्रकाशमानपना रहा और विश्व का साक्षीपना न रहा।

'**सहज**' का अर्थ ऐसा होता है कि केवलज्ञान का ऐसा स्वभाव ही है, पंडित हेमराजजी ने श्री प्रवचनसार की गाथा ३७ में कहा है कि 'ज्ञान के स्वभाव में तर्क नहीं चल सकता है।' इसलिये अकालमृत्यु शब्द से तर्क लगाना कि 'वह भगवान के ज्ञान में उसका काल निश्चित नहीं है और जब प्रगट होगा, तब जानने में आवेगा'—ऐसे तर्क को स्वभाव के स्वरूप में स्थान ही नहीं है।

उसीप्रकार मोक्ष जानेवाले जीव के कर्म की निर्जरा कब होगी और वह कब पूर्ण होगी, इस विषय में अनियम है—ऐसा मानकर भगवान के केवलज्ञान में अनिश्चितपना का तर्क लगाना अयोग्य है।

श्री गोम्मटसार जीवकांड, पृष्ठ ४३९ में भी कहा है कि केवलज्ञान का और श्रुतकेवली का ज्ञान एक जैसा ही है और इन दोनों का ऐसा स्वभाव क्यों है—ऐसा तर्क उठाना, न्याय से विरुद्ध है।

'विमल' का अर्थ मल न रहे। भविष्य की विकारी पर्याय, अशुद्ध पर्याय किसप्रकार होगी? वह जब तक पर्याय प्रगट न होवे, तब तक अनिश्चित रहती है—ऐसा मानना 'विमलता' से विरुद्ध है।

'सकल' का अर्थ—परिपूर्ण, कोई भी बात अज्ञात न रहे। अज्ञानी की पर्याय और विकारी पुद्गल की पर्याय का समय-समय में व्यय होता है और उसी समय में नई-नई पर्याय उत्पन्न होती है, इसीप्रकार हरसमय में किस पर्याय का व्यय होकर कौनसी पर्याय का उत्पन्न होना, ऐसा ज्ञान न हो – ऐसा बन सकता ही नहीं है; इसलिये समय-समय का परिणमन ज्ञेय है, वह भगवान के ज्ञान में प्रतिभासित होता ही है, यदि न हो – ऐसा मानने में आवे तो सकलज्ञानी कैसा हो सकता है और फिर समय-समय की पर्याय ज्ञेय किसप्रकार हो सकेगी? इसलिये भविष्य की विकारी-पर्याय जब तक प्रगट नहीं होती है, तब तक वह अनिश्चित है – ऐसा मानना, **ज्ञान और ज्ञेय के स्वरूप से विरुद्ध है।**

'केवलज्ञान को कुछ और जानना अवशेष (बाकी) नहीं है।' (देखिये, श्री प्रवचनसार, गाथा ५१, पृष्ठ ६७, पंडित हेमराजजी। पंचास्तिकाय, गाथा २४, पृष्ठ ६४, पंडित हेमराजजी, सर्वार्थसिद्धि वचनिका, पृष्ठ ८८; पंचास्तिकाय, श्री जयसेनाचार्य, गाथा ४३ पीछे के नई गाथा ५, पृष्ठ ८१ में कहा है कि भगवान को कुछ ज्ञान होवे और कुछ न होवे—ऐसा है ही नहीं, यदि कोई भी बात अनिश्चित हो तो उसका अज्ञान रहा, परंतु ऐसा हो सकता नहीं है।

केवली भगवान के ज्ञान को विज्ञानघन कहा है, वह भी सिद्ध करते हैं कि कोई भी पर्याय एक समय भी अनिश्चित होवे तो उसका विज्ञानघनपना नहीं रहेगा।

यहाँ भी ज्ञान और ज्ञेय, ज्ञेय और ज्ञान का परस्पर निमित्त-नैमित्तिक संबंध सिद्ध किया है।

२१३—**प्रश्नः**—श्री समयसार की गाथा २३ से २५ तक की टीका में लिखा है कि जिसने समस्त संदेह, विपर्यय और अनध्यवसाय दूर कर दिये हैं और जो विश्व को (समस्त वस्तुओं को) प्रकाशित करने के लिये एक अद्वितीय ज्योति हैं, ऐसे सर्वज्ञ का ज्ञान है, उसमें अनध्यवसाय का क्या अर्थ है?

उत्तरः—जो भविष्य की विकारी पर्याय, जब तक वह प्रगट न होवे, तब तक वह अनिश्चित हो तो भगवान के ज्ञान में अनिर्णय रहा अर्थात् 'अनध्यवसाय नाम का दोष हुआ'—ऐसा सर्वज्ञ के ज्ञान में होता ही नहीं है। सर्वज्ञपना पर्याय में प्रगट हुआ, उसीसमय से भविष्य की पर्याय किसप्रकार होनेवाली है, कब होनेवाली है, निमित्त-उपादान क्या, निमित्त-नैमित्तिक क्या, अविभाग-प्रतिच्छेद कितना है – इन सबका स्वरूप न जाने तो वह सर्वज्ञ कैसा?

देखिये! इस गाथा की टीका बड़ी उपयोगी है। श्री अमृतचंद्राचार्य, सर्वज्ञज्ञान का आश्रय लेकर केवलज्ञान में वस्तु का स्वरूप कैसा आया है, वह अज्ञानी को बताते हैं और कहते हैं कि तुम ऐसा नहीं मानने से स्वयं स्वतः अपने दोष से अज्ञानी रहे हो। यहाँ ऐसा समझना चाहिये कि सर्वज्ञ, जैनधर्म का मूल है और उसके ज्ञान में ज्ञेय का स्वरूप किसप्रकार आया है, वह सर्वज्ञज्ञान अनुसार कहना चाहिए। जो विश्व को (समस्त वस्तुओं को) प्रकाशित करने के लिए एक अद्वितीय ज्योति हैं, ऐसे सर्वज्ञज्ञान से स्फुट (प्रगट) किये गये नित्य उपयोग-स्वभावरूप जीवद्रव्य, वह पुद्गलद्रव्यरूप कैसे हो गया कि जिससे तू यह अनुभव करता है कि 'यह पुद्गलद्रव्य मेरा है ?'

वह टीका, श्रीकुन्दकुन्दाचार्य कृत समयसार की गाथा में है और वही, गाथा २४ में सर्वज्ञ के ज्ञान का आश्रय लिया है। जैनधर्म का स्वरूप ही ऐसा है कि सर्वज्ञ के आश्रय से ही सब ज्ञेयों का स्वरूप निश्चित करना चाहिये।

ज्ञेय का स्वरूप

२१४—**प्रश्नः**—श्री प्रवचनसार, गाथा ४१ में अनावरण, अतीन्द्रिय, सर्वज्ञ ज्ञान का स्वरूप कहा है; उसमें लिखा है कि अनुत्पन्न एवं व्यतीत पर्यायमात्र **ज्ञेयता का अतिक्रमण न करने से ज्ञेय ही है,** उसका क्या अर्थ है ?

उत्तरः—वे पर्यायें, तात्कालिकरूप से ज्ञान में ज्ञेय होती हैं, जब वह पर्यायें प्रगट होवें, तब ज्ञान में आवें, उसके पहिले अनिश्चितरूप से रहे और ज्ञान में न आवें तो वह ज्ञेयता का अतिक्रमण हुआ अर्थात् **ज्ञेय नहीं रहा।** निरावरण ज्ञान, ज्ञेयमात्र को (द्रव्य-पर्यायमात्र को) जानता है। '**मात्र**' शब्द से स्पष्ट हुआ कि पर्याय विकारी हो या अविकारी हो। किंतु पर्यायपने को उल्लंघन नहीं करती है, इसलिये 'पर्यायमात्र में ही उसका समावेश हो गया।'

२१५—**प्रश्नः—ज्ञान-ज्ञेय का और ज्ञेय-ज्ञान का परस्पर निमित्तपना** आत्मा को '**निर्मूढ़**' कहने में आता है, उसका क्या अर्थ है ?

उत्तरः—सादि-अनंत अतीन्द्रिय स्वभाववाले शुद्ध सद्भूत व्यवहारनय से तीन काल और तीन लोक के स्थावर-जंगमस्वरूप समस्त द्रव्य-गुण-पर्याय को एक समय में जानने में समर्थ सकल-विमल (सर्वथा निर्मल) केवलज्ञानरूप से अवस्थित होने से आत्मा निर्मूढ़ है।

(देखिए, नियमसार, गाथा ४३, पृष्ठ ९२)

इसमें तीन काल और तीन लोक को एक समय में जानने की सामर्थ्यता है, वह कब हो सकती है ?—ऐसा विचार करने पर कोई भी भविष्य की पर्याय स्वाभाविक हो कि वैभाविक हो, वह केवलज्ञान हुवे तब से शुरु करके केवलज्ञान में न आवे तो उसको ज्ञान कौन कहेगा ? पराकाष्ठा को पहुँचनेवाले ज्ञान का स्वरूप अद्‌भुत है। विकारी पर्याय जब तक प्रगट न हो, तब तक वह अनिश्चित है—ऐसा माननेवाला सर्वज्ञ के स्वरूप को यथार्थपने नहीं जानता है, यहाँ 'समस्त' शब्द बड़ा उपयोगी है, वह पर्यायों पर भी लागू पड़ता है। विकारी पर्याय, पर्यायपने का उल्लंघन नहीं करती, इसलिये समस्त पर्यायों में विकारी पर्याय भी आ जाती है।

ज्ञेय के लिये निमित्त है—ऐसा नहीं माननेवाले का अभिप्राय श्री कुन्दकुन्दाचार्य के अभिप्राय से विरुद्ध है। (देखिये, श्री समयसार की गाथा ३५६ से ३६५, पृष्ठ ४९६, ४९७, ४९७, १९८, ४९९ की टीका तथा श्री प्रवचनसार की गाथा २६, ३६, ४३, २०० इत्यादि (देखिये, इस लेख का पृष्ठ ११०, १११)

२१६—**प्रश्नः**—भविष्य की विकारी पर्यायों को अनिश्चित कल्पना कहनेवालों की तरफ से क्या तर्क उठाने में आते हैं ?

उत्तरः—कब, कैसा निमित्त, किसको, कहाँ मिलेगा ? उसकी कैसी प्रतिक्रिया होगी ? यह बात अनिश्चित रहती है - ऐसा तर्क है। अब देखिये, कैसा निमित्त, किसको, कहाँ मिलेगा- वह बात केवलज्ञान में न आये तो किस ज्ञान में आवे ? सर्वार्थसिद्धि वचनिका, पृष्ठ १६६, १६७ में **'ऋद्धि प्राप्त आर्य'** का वर्णन; उसमें **'अष्टांग महानिमित्त ज्ञान'** का स्वरूप बताया है; ऐसे जीव को भी अतीत और अनागत, बहुत प्रकार की अशुद्ध पर्यायों का ज्ञान होता है तो केवली को उसका पूर्ण ज्ञान न होवे—ऐसा कैसे बन सकता है ? केवलज्ञान के स्वभाव में किसी तर्क को अवकाश ही नहीं है। इसलिये तर्क उठाकर जो ऐसा कहा है कि—केवलज्ञान में कुछ 'अनिश्चित' रहता है—इसप्रकार कहना न्याय से विरुद्ध है। समय-समय की पर्याय का उत्पाद, व्यय, कारण, कार्य, उपादान-निमित्त क्या है ? - वह सब श्री प्रवचनसार, गाथा ३७, ३८, और ३९ के अनुसार केवलज्ञानी जानता ही है। श्री पंचास्तिकाय, पृष्ठ ९८, १५५ और २२४ में केवलज्ञान का स्वरूप निम्नप्रकार कहा है।—क्रमकरण-व्यवधानरहित, त्रैलोक्य-उदर-विवर्ती, **समस्त वस्तुगत अनंत धर्म प्रकाशक, अखंड प्रतिभासमय केवलज्ञान** (गाथा ४९, पृष्ठ ९८) **समस्त वस्तुगत अनंत धर्म, युगपत प्रकाश द्वारा परम चैतन्य विलास लक्षण द्वारा ज्ञानगुण** (गाथा ९६, पृष्ठ १५५) **समस्त**

वस्तुगत अनंत धर्मों के युगपत् विशेष परिचित समर्थ केवलज्ञान।

(गाथा १५४, पृष्ठ २२४ वि० सं० १९७२ आवृत्ति)

भविष्य की विकारी पर्याय भी वस्तु का धर्म है और ज्ञेय है, अत: वह पर्याय भी धर्मपने को उल्लंघन नहीं करती है। इसलिये केवलज्ञान, **तात्कालिकरूप से** विशेष प्रकार से (कुछ भी अवशेष रखे बिना) उसको जानते हैं, और ज्ञेय अपना स्वरूप अकंपपने ज्ञान को अर्पण करते हैं—ऐसा समझना।

२१७—**प्रश्न:**—भविष्य की विकारी पर्याय को अनिश्चित मानने में कोई विचित्रता आती है?

उत्तर:—हाँ आती है, उसका खुलासा इसप्रकार है—

अनिश्चित माननेवाले को ऐसा होगा कि भगवान के समवसरण में सौ इन्द्र आये, सभा लगी, कब उठेगी, इसका ज्ञान भगवान को केवलज्ञान हुआ तहाँ से नहीं हुआ, क्योंकि वह सब विकारी जीवों की और विकारी पुद्गलों की पर्यायें हैं; जब समवसरण उठेगा, तब भगवान के ज्ञान में आयेगा, वह विचित्रता आई, अवधिज्ञानी है और मन:पर्ययज्ञानी हैं, वह सब तो पहले से जान सकते हैं कि वह कब उठेगा और भगवान पहले से नहीं जानते—ऐसी विचित्रता विकारी पर्यायों को अनिश्चित मानने में आई। अत: केवलज्ञान-स्वभाव में तर्क न उठाकर जैसा आगम में कहा है, वैसे सर्व स्वरूप को भगवान जानते हैं—ऐसा मानना चाहिए।

श्री सर्वार्थसिद्धि, श्री अकलंकदेव कृत राजवार्तिक, श्री समयसार, श्री गोम्मटसार, श्री प्रवचनसार, श्री समाधिशतक, श्री धवल, श्री जयधवल, श्री प्रमेयकमलमार्तंड, श्री राजवार्तिक, श्री श्लोकवार्तिक, श्री पद्मनन्दि पंचविंशतिका आदि सब जगह केवलज्ञान का स्वरूप आता है; उन सबका वर्णन करने से यह लेख बहुत बड़ा हो जाता है। इसलिये यहाँ पर लिखने में नहीं आया है। कृपा करके जिज्ञासु पढ़ लेवें।

भगवान के भामंडल में जो देखे, उसको सात भव देखने में आते हैं और भगवान के केवलज्ञान में न आवे, वह दूसरी विचित्रता है। भव, जीव की विकारी पर्याय है और उसके साथ आयुकर्म भी पुद्गल की विकारी पर्याय है।

२१८—**प्रश्न:**—केवलज्ञान का स्वरूप, क्रम और व्यवधान से रहित कहने में आता है, उसका क्या अर्थ है?

उत्तर:—यदि कोई भी पर्याय अनिश्चित हो तो उसके प्रगट होने के पहिले उसका ज्ञान

नहीं होगा; इसलिये वह ज्ञान, केवलज्ञान नहीं हुआ। केवलज्ञान में क्रम आया, अक्रम नहीं आया। केवलज्ञान में कोई पर्दा, बाधा, अंतराय नहीं है। जिज्ञासुओं को यह स्वीकार करना चाहिए कि—उत्पाद-व्ययरूप, पर्याय हर समय में होती है और उन उत्पाद, के लिए क्या-क्या उपादानकारण हैं; क्या-क्या निमित्तकारण, वह सब केवलज्ञान में बराबर आ जाते हैं; यदि न आवे तो केवलज्ञान नहीं कहलाता और वह पर्यायें, ज्ञेय नहीं कहलाती, इसलिये कब, कैसा निमित्त मिलेगा, वह सब अनिश्चित बात है—ऐसा मानना तात्त्विक नहीं है, कल्पित है।

किस समय में कैसा निमित्त मिलेगा? यह सब अवधिज्ञान में, मनःपर्ययज्ञान में और योगियों को मालूम पड़ता है, साथ ही अष्टांग महानिमित्तज्ञान में भी ज्ञात होता है और भगवान को केवलज्ञान में भविष्य की पर्याय ज्ञात न हो—ऐसी बात जैनधर्म में कैसे चल सकती है?

२१९—**प्रश्नः**—स्वामी कार्तिकेय अनुप्रेक्षा की गाथा ३२१ से ३२३ में जो कहा है, उससे क्या सिद्ध होता है?

उत्तरः—जिस जीव को, जिस विधि से, जिस देश में, जिस काल में नियत है, जिनेन्द्रदेव ने उसको जाना है। **इससे** उस जीव को, उस देश में, उस विधि से, उस काल में **नियम से जन्म-मरण होता है,** उसको दूसरा कोई बदल नहीं सकता है। उसका अर्थ यह हुआ कि होनेवाली जन्म-मरण की जो विकारी पर्याय है, वह भगवान, केवलज्ञान में जानते हैं, उसका **काल भी** जानते हैं, उसका **क्षेत्र** भी जानते हैं, **उसकी विधि भी, अर्थात् उपादान-निमित्तरूप सामग्री सब नियतरूप से जिनेन्द्रदेव जानते हैं।**

कैसा निमित्त, **किसको,** कहाँ मिलेगा, **किस क्षेत्र** में मिलेगा, उसकी कैसी प्रतिक्रिया (विधि) होगी, यह बात अनिश्चित रहती है—ऐसी मान्यता इन तीन गाथाओं से गलत सिद्ध होती है।

अनेकांत

निश्चित-अनिश्चित

२२०—छह द्रव्यों की हरेक पर्याय हर समय में (अतीत, वर्तमान, अनागत) वह अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से निश्चित है। परद्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से निश्चित नहीं है, अर्थात् अनिश्चित है; किंतु इसलिये उसका निश्चित काल मिट जाता नहीं है। श्री समयसार, सर्वविशुद्धज्ञान अधिकार की गाथा ३०८ से ३११ में सब जीव और अजीव की पर्यायों को क्रम-नियमित कहा है, कोई भी पर्याय को क्रम-अनियमित कहा ही नहीं है और पंडित जयचंदजी ने

नियमित का अर्थ निश्चित किया है, इससे सिद्ध होता है कि सर्व छह द्रव्यों की अनादि से-अनंत काल तक की पर्यायों का कालक्रम निश्चित ही है।

२२१—**द्रव्य की व्याख्या, अनादि-अनंत पर्याय का पिंड—ऐसा करने में आई है और गुण की व्याख्या, अपनी अनादि-अनंत पर्याय का पिंड—ऐसा करने में आई है।** भूत, वर्तमान और भावी—सब पर्याय हरेक द्रव्य की 'स्वोचित' ही होती है—ऐसा द्रव्य समूह का ज्ञेय स्वभाव है और 'स्वोचित' पर्याय हो, वे नियम से निश्चित ही हो सकती है। देखिये, श्री प्रवचनसार, गाथा २३९ की टीका। उस टीका का उपयोगी भाग निम्न अनुसार है:—

'×××भूत-वर्तमान-भावी स्वोचित पर्यायों के साथ अशेष द्रव्य-समूह को जाननेवाले आत्मा को जानता है।'

बौद्धमत

२२२—एक भी विकारी पर्याय का कि उसका एक भी धर्म का एक समय भी परिपूर्ण ज्ञान वर्तमान में न हो तो द्रव्य का पूर्णज्ञान, गुणों का पूर्णज्ञान और पर्यायों का पूर्णज्ञान कभी भी नहीं होगा। ज्ञान का ऐसा अपूर्णस्वरूप तो अन्यधर्मी मानते हैं, किंतु जैनधर्म उनसे विरुद्ध मानता है; देखो, सूरत से प्रकाशित, पृष्ठ १६२, श्री प्रवचनसार, गाथा ४१ में श्री जयसेनाचार्य कहते हैं कि:—

२२३—'इस प्रकार **अतीत व अनागत पर्यायें, वर्तमान ज्ञान में प्रत्यक्ष नहीं होती हैं - ऐसे बौद्धों के मत को निराकरण करते हुए तीन गाथाएँ कहीं,** उसके पीछे इन्द्रियज्ञान से सर्वज्ञ नहीं होता है, किंतु अतीन्द्रियज्ञान से होता है—ऐसा कहकर, नैयायिकमत के अनुसार चलनेवाले शिष्य को समझाने के लिये गाथा दो, ऐसे समुदाय से पाँचवें स्थल में पाँच गाथायें पूर्ण हुई।'

२२४—भगवान कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने इन गाथा ३७, ३८ और ३९ में बौद्धों के मत का निराकरण किया है, इससे सिद्ध हुआ कि अनागत पर्यायें, ज्ञान में एक समय भी प्रत्यक्ष न होवे तो—उसका एक भी अंश, उसका एक भी धर्म, उसका प्रदेश, उसका काल, उसका आकार (स्वरूप) आदि में से एक छोटे में छोटा अंश, अर्थात् अविभाग प्रतिच्छेद, ज्ञान में नहीं आवेगा किंतु ऐसी मान्यता जैन की नहीं होती।

२२५—श्री प्रवचनसार, गाथा ४०, ४१ नैयायिकमत का अभिप्राय असत्य है—ऐसा बतलाते हैं; जो कोई एक भी भविष्य की विकारी पर्याय, सर्वज्ञ के ज्ञान में प्रत्यक्ष नहीं होती है—ऐसा माननेवाला तो, जिसको सबसे ज्यादा इन्द्रिय और मानसिक ज्ञान हो, उसको ही सर्वज्ञ

मानते हैं, जो कि यह अभिप्राय अयथार्थ है। मतिज्ञान आदि चारों ज्ञान क्रम-क्रम से वर्तन करते हैं, इसलिये वे क्षायोपशमिक हैं, इससे सिद्ध हुआ कि अपने को जैन मानने पर भी, जो जीव, नैयायिक के अनुसार माने तो उसकी मान्यता असत्य है, वह सर्वज्ञ की आज्ञा के बाहर है।

वर्तमानगम्य जगत पर से निश्चित पर्याय की सिद्धि

२२६—वर्तमान में 'जोन काल्वर्ट' नाम का एक व्यक्ति अमेरिका में रहता है, जो कि तत्त्वज्ञान से अपरिचित है। इस पर भी वह कल, किस पेपर में कौनसा समाचार आवेगा और किसी भी भाषा के प्रथम पृष्ठ पर मुख्य समाचार का हेडिंग (Heading) क्या आयेगा? वह आज स्पष्ट बता देता है। इस विषय में तारीख १४ से तारीख १७-५-१९६३ के बंबई के प्रसिद्ध पत्र 'टाइम्स ऑफ इण्डिया', 'जामे जमशेद', 'जन्मभूमि' पत्रों में देख लेवें, उसमें विस्तार से वर्णन है।

२२६—मिस्टर—पीटर नाम का एक भविष्य ज्ञानी है, जिनका जन्म हालैण्ड में हुआ है। आजकल वह अमेरिका में रहता है। वह दूसरे व्यक्तियों के भविष्य में क्या-क्या मुख्य घटनायें होनेवाली हैं, वह कुछ समय की मर्यादा तक का कह देता है। यह बात कसौटी पर लेने से सच्ची मालूम पड़ी है।

२२७—अब देखिये कि वर्तमान काल के कितनेक शास्त्र अभ्यासी कहते हैं कि ज्ञेयों में विकारी पर्याय अनिश्चित है, जब वह वर्तमानरूप प्रगट होगी, तब ज्ञान में प्रत्यक्ष होगी; जबकि वर्तमान में तत्त्वज्ञान से अपरिचित व्यक्ति भी भविष्य की बातें निश्चित जान लेते हैं और अनादि से अनंत काल तक का केवलज्ञानी और सिद्ध भगवान के ज्ञान में वह अनिश्चितरूप से है, ऐसा मानना।... देखिये कैसी विचित्रता है! जो कालवर्ट और पीटर अपना भविष्य नहीं जान सकते और दूसरों का वह भविष्य बता देते हैं।

२२८—भविष्य में होनेवाली विकारी पर्यायें अनिश्चित है, वह किसने जाना? केवलज्ञानी के ज्ञान में तो तात्कालिकरूप और विशेषरूप से प्रत्यक्ष निश्चित ही दिखता है, अवधिज्ञानी को भी अपने ज्ञान के विकास की मर्यादा के अनुसार निश्चित दिखता है और उसीप्रकार मन:पर्ययज्ञानी को, योगियों को, श्रुतकेवलियों को, श्रुतज्ञानियों को और अष्टांग महानिमित्त ज्ञानियों को निश्चितरूप से दिखते हैं।

२२९—आगम तो भगवान अरहंत सर्वज्ञ उपज्ञ है, अर्थात् सर्वज्ञ ने स्वयं जानकर उपदिष्ट है, उसमें तो कोई भी जगह पर केवलज्ञान का विषय (ज्ञेय) अनिश्चित हो - ऐसा कहा नहीं है।

इससे सिद्ध हुआ कि—वह अनिश्चित की बात कल्पित है।

(देखिये, श्री प्रवचनसार, गाथा ३४ और उसकी टीका)

अकाल—अनियम—अनवस्थित—अनियत—अनिश्चित

२३०—जिज्ञासुओं को सावधानीपूर्वक शास्त्र के शब्दों का अर्थ करना चाहिये। अर्थ करने की रीति में, किस नय का कथन है, वह भी समझ लेना चाहिये। किसी भी शब्द और वाक्य का अर्थ, तत्त्वस्वरूप से विरुद्ध नहीं होना चाहिये।

(१) अकालः—

२३१—सोपक्रम आयुवाले जीव के नियम से आयुकर्म की उदीरणा होती है; उस मरण को व्यवहारनय से अकाल—मृत्यु कहते हैं और निश्चयनय से सब मरण को '**स्वकर्म कृत काल कला**' कहा है, कोई भी मरण आगे-पीछे नहीं होता है। *(देखिये, अनित्य पंचाशत, श्लोक १८)*

२३२—'**अकाल**' शब्द भगवान पद्म प्रभु की पूजा में भी आता है, वह निम्न प्रकार हैं:—

इस विकट काल अकाल माहीं पद्म प्रभु पद ध्याइये।
तिहिं भक्ति वस निज लहै पद्मा सुख अनोपम पाइये॥

२३३—इस पंक्ति में '**अकाल**' शब्द का अर्थ अनिश्चित काल हो सकता नहीं है, किंतु पंचम काल को विकट काल कहने में आया है। इसलिये उसको 'अकाल' कहा है। 'अकालमृत्यु' में अकाल का अर्थ अनिश्चित काल—ऐसा होता नहीं है। आगम में कोई जगह पर ऐसा अर्थ करने में आया ही नहीं है। भगवती आराधना में आयुकर्म की उदीरणा को अकाल कहा है। वह अपने स्वकाल में ही होती है, अन्य काल में नहीं। जिस जीव को अकालमृत्यु हुई—ऐसा कहने में आता है, उसने तो पूर्वभव में सोपक्रम आयु का बंध किया था, (निरुपक्रम आयु का बंध नहीं किया था), इतना आयुकर्म के स्वरूप भेदों को बताने के लिये अकालमृत्यु कहने में आया है; इसलिये वे अपने निश्चितकाल में नहीं होती हैं—ऐसा नहीं है।

(२) अनियमः—

२३४—'अनियम' शब्द के प्रयोग से अनिश्चितपना मान लेना न्याय से विरुद्ध है। 'अनियम'—का अर्थ नियम नहीं, इतना होता है। राजवार्तिक में अध्याय पहला, सूत्र तीसरे की टीका में 'वार्तिक' सात में शिष्य ने एक प्रकार काल का नियम सब भव्यों के लिये कहा था। ऐसा नियम नहीं है, वह बताने के लिये '**काल अनियमात्**' ऐसा कथन वार्तिक ९ में आया है; परंतु मोक्ष

जानेवाले जीव को स्वकाल अनिश्चित है—ऐसा उसका अर्थ होता नहीं है। मोक्ष प्राप्त करनेवाले जीवों को निर्जरा और मोक्ष का काल अनिश्चित है—ऐसा अर्थ करना, वह श्री धवला से श्री प्रवचनसार में जयसेनाचार्य की टीका से, द्रव्यसंग्रह की टीका से, श्री समयसार कलश टीका से तथा श्री प्रवचनसार, गाथा २०० की टीका से विरुद्ध है।

(३) अनवस्थितः—

२३५—संसारी जीव की पर्याय को स्वभाव से अनवस्थित कहा है, उसका अर्थ इतना है कि कोई का स्वभाव **केवल अविचल एकरूप रहनेवाला नहीं है;** इसका अर्थ कौनसी विकारी पर्याय कब होगी, वह निश्चित नहीं है—ऐसा नहीं होता। 'अनवस्थित' का अर्थ विभावरूप पर्याय होता है, अर्थात् मनुष्यादि पर्याय विनश्वर है—ऐसा उसका अर्थ समझ लेना। (देखिये श्री प्रवचनसार, गाथा १२०, पृष्ठ १६९ श्री जयसेनाचार्य की टीका—सिद्ध की पर्याय ऐसी न होने से अविनाशी कहने में आती है और संसारी पर्याय इससे विरुद्ध है। पंडित हेमराजजी लिखते हैं कि 'इसलिये संसार में मनुष्यादि कोई भी पर्याय **अविनाशी नहीं है।** स्वभाव ही से **सब अस्थिररूप है।**' इसलिये अनवस्थित का अर्थ अस्थिर, अर्थात् सिद्ध की अविनाशी पर्याय से विरुद्ध—ऐसा अर्थ होता है। *(देखिये, श्री अमृतचंद्राचार्य की टीका, पृष्ठ १५७ और श्री समयसार की गाथा २०३ की टीका)*

(४) अनियतः—

२३६—वह विभाव पर्याय, जो अस्थिर पर्याय है, उसी को अनियत कहने में आता है क्योंकि वह एकरूप नहीं रहती है, किंतु हरेक विभावपर्याय का स्वकाल है, वह अन्य काल में होती नहीं है। *(देखिये इस लेख का पृष्ठ २४८, २४९, २५०)*

(५) अनिश्चितः—

२३७—अनिश्चित पर्याय का अर्थ अस्थिर होता है, उसको अनियत भी कहते हैं लेकिन उसका स्वकाल नियत नहीं है - ऐसा नहीं है। नियत है-निश्चित है। यदि निश्चित न हो तो वह ज्ञेय की व्याख्या में आवेगा ही नहीं। (देखिये, ज्ञेय का स्वरूप इस लेख में अनेक स्थल पर आया है।)

२३८—प्रथम प्रश्न का उत्तर पूर्ण करने से पूर्व, भगवान् अमृतचंद्राचार्य के कलश ६२ पर लक्ष्य खींचने में आता है, वह कलश निम्न प्रकार है—

आत्मा ज्ञानं स्वयं ज्ञानं ज्ञानादन्यत्करोति किम्।
परभावस्य कर्तात्मा मोहोऽयं व्यवहारिणाम्॥

अर्थः—आत्मा ज्ञानस्वरूप है, स्वयं ज्ञान ही है; वह ज्ञान के अतिरिक्त अन्य क्या करे? आत्मा, परभाव का कर्ता है—ऐसा मानना (तथा कहना), सो व्यवहारी जीवों का मोह (अज्ञान) है।

जयवंत वर्तो स्याद्वाद मुद्रित जैनेन्द्र शब्द ब्रह्म।
जयवंत वर्तो शब्दब्रह्ममूलक आत्मतत्त्वोपलब्धि॥

(क्रमशः)

बंध का कारण

रत्नत्रयमिह हेतुर्निर्वाणस्यैव भवति नान्यस्य।
आस्रवति यत्तु पुण्यं शुभोपयोगोऽयमपराधः॥

अर्थः—इस लोक में निश्चयरत्नत्रय मोक्ष का ही कारण है और दूसरी गति का कारण नहीं। किंतु रत्नत्रय के सद्भाव में जो पुण्य का आस्रव होता है, वह सब शुभ कषाय—शुभयोग से ही होता है अर्थात् शुभोपयोग का ही अपराध है, किंतु रत्नत्रय का नहीं।

भावार्थः—गुणस्थान के अनुसार मुनिजनों को जिस समय रत्नत्रय की आराधना है, उस समय देव-शास्त्र-गुरु सेवा, भक्ति, दान, शील, उपवासादिरूप शुभोपयोग का भी आचरण है। उस शुभोपयोग का आचरण ही देवायु आदि पुण्य प्रकृति बंध का कारण है अर्थात् इस पुण्य प्रकृति के बंध में शुभोपयोग का अपराध कारण है, रत्नत्रय का नहीं।

[श्री अमृतचंद्राचार्यकृत पुरुषार्थसिद्धि उपाय की स्व० पंडित टोडरमलजी कृत टीका।]

दशलक्षण धर्म पर्व संबंधी बाहर गाँव के खास समाचार

इस साल पर्यूषण पर्व में बाहर गाँव से प्रवचनकार विद्वानों के लिये बहुत आमंत्रण आये थे, उस मुताबिक १४ गाँवों में सोनगढ़ दिगम्बर जैन मुमुक्षु महामंडल के प्रचार विभाग द्वारा विद्वानों को भेजने में आये थे। जिन गाँवों के समाचार आये हैं, वे निम्न प्रकार हैं—

(१) **नैरोबी (अफ्रीका)** से श्री प्रेमचंद केशवजी सेक्रेटरी श्री दिगम्बर जैन मुमुक्षु मंडल– लिखते हैं कि हमारी विनती के अनुसार राजकोट निवासी विद्वान पंडित श्री देवशीभाई को भेजकर यहाँ की समाज पर बड़ा भारी उपकार किया है, साथ में श्री जिनेन्द्र भगवान की प्रतिमाजी पधारने से प्रत्येक मुमुक्षुओं को साक्षात् प्रभु दर्शन का लाभ मिला, हमेशा दर्शन–पूजन भक्ति चालू है और यथाशक्ति हरेक लाभ ले रहे हैं। पंडितजी का आना सचमुच जैनधर्म के उद्योत के लिये ही है। हरेक बात बहुत स्पष्टतया दृष्टांत–सिद्धांत और युक्ति सहित समझाते हैं, जिससे प्रत्येक के हृदय में बराबर तत्त्व जम जाता है। पर्यूषण पर्व में श्वेताम्बर जैन तथा अन्य प्रतिष्ठित धर्म जिज्ञासुओं ने भी लाभ लिया और अपूर्व धर्म प्रभावना हुई।

(२) **जबलपुर** से श्री ज्ञानचंदजी सा० लिखते हैं कि श्री बाबूभाई तथा श्री चंदुभाई फतेपुर निवासी यहाँ पधारे। उनके प्रवचनों में यहाँ की संपूर्ण जैन जनता ने अपूर्व रुचि दिखलाई। कार्यक्रम सबेरे ७ से ८ बजे तक मोक्षमार्गप्रकाशक में से जैन मतानुयायी मिथ्यादृष्टि की भूल पर विवेचन, ८ से ९ बजे तक समूह पूजन, १० से ११ बजे तक तत्त्वार्थसूत्र, ४ से ५ बजे तक मन्दिरजी में भक्ति, रात्रि को ९ से १० बजे तक उत्तम क्षमादि धर्मों पर विवेचन।

श्री बाबूभाई के प्रवचनों से यहाँ सोनगढ़ की यथार्थता–सत्यता का परिचय हुआ और तत्त्व निर्णय की अभूतपूर्व लगन लगी। धर्म का वास्तविक स्वरूप समझने में लोगों को अविचल श्रद्धा पैदा हो गई है। सैंकड़ों व्यक्ति यह कहते हुए मिले कि ४०–५० वर्षों से पर्यूषण पर्व में इसप्रकार का प्रयोजनभूत रहस्य सुनने को नहीं मिला। इतने सरल तरीके से न्यायपूर्ण शैली में आध्यात्मिक तत्त्व का रहस्य सुनने का अभूतपूर्व मौका जबलपुर की जैन समाज को प्राप्त हुआ है।

हर रोज के प्रवचनों में एक हजार से लेकर ४ हजार तक की भीड़ होती रही और प्रवचनों

की सारगर्भितता से तथा तत्त्वस्वरूप को प्रतिपादन करने की अभूतपूर्व—अनुपम और सीधी-साधी प्रणाली होने से इतने बड़े समूह ने भी सभी प्रवचनों को अत्यधिक दत्तचित्त होकर मंत्रमुगध होकर सुना है।

भक्ति का कार्यक्रम भी बहुत ही रोचक और प्रेरणाप्रद रहा। लोगों के हृदय वास्तविक भक्ति का रूप देखकर बहुत ही प्रभावित हुए और व्यवहार के यथार्थ पक्ष के दर्शन कर सभी के हृदयों की यह भ्रान्ति निकल गई कि सोनगढ़ में मात्र तत्त्वचर्चा ही होती है, उसके अनुसार जीवन में कुछ भी परिवर्तन नहीं होता।

सोनगढ़ के बारे में जन साधारण की भावना बहुत ही विश्वासपूर्ण और आत्म-साधना के लिये आश्रय लेने योग्य बनी है। यह सब श्रद्धास्पद पूज्य कानजी स्वामी के अनुपम माहात्म्य का फल है जो जैनधर्म के सच्चे (सत्य) स्वरूप का दिग्दर्शन यहाँ की समाज को मिला है।

श्री बाबूभाई की वैयक्तिक विशेषताओं, चारित्रमान श्रेष्ठताओं, धर्म संबंधी अनुभूतियों ने यहाँ के जनमानस को पूरी तरह मोहित किया है। अंत में सोनगढ़ की प्रचार समिति का आभार मानता हूँ।

यहाँ जैन स्वाध्यायमंदिर भवन बनाने का निश्चय हुआ है, और उसके लिये २० हजार का चंदा भी हुआ है, मुमुक्षु मंडल की स्थापना भी हुई है और करीब १०० भाई-बहिनें इकट्ठे होते हैं, निकट भविष्य में प्रगति का पूर्ण विश्वास है।

(३) सागर (म० प्र०) से सिंघई डालचंदजी सर्राफ का पत्र है कि इस वर्ष भी गत वर्ष की भाँति आपने अच्छे अध्यात्म ज्ञाता रसिक एवं चारित्रवान वक्ता पंडित हिम्मतभाई बम्बईवालों को भेजा, हम अत्यंत आभार मानते हैं। पंडितजी के प्रवचन तत्त्वार्थसूत्र, दशलक्षण धर्म और समयसारजी पर होते थे। दृष्टांत दार्ष्टांतों द्वारा वस्तु का तथा तत्त्व का ज्ञान बड़ी रोचकता से कराते थे—जिससे लोगों को बहुत लाभ हुआ, काफी प्रभावित हुए। साथ-साथ सिद्धचक्र मंडल विधान में बड़ी भक्ति के साथ पूजा व विधान पढ़वाते थे। आपकी विद्वत्ता के कारण कई मंदिरों में प्रवचन कराया और सन्मान पत्र दिया गया। बहुत लोगों ने सोनगढ़ आने का विचार भी किया। सागर समाज पूज्य स्वामीजी के प्रति अत्यंत आभार प्रदर्शित करता है।

(४) विदिशा-भेलसा (म०प्र०) से श्री नंदकिशोरजी वकील दिगम्बर जैन समाज की ओर से समाचार में लिखते हैं कि—हमें यह लिखते अत्यंत प्रसन्नता होती है कि आपने हमारे

निवेदन को स्वीकार करके पर्यूषण पर्व के लिये माननीय पंडित श्री धन्नालालजी लश्करवालों को विदिशा पधारने की व्यवस्था कर दी, जिसके लिये विदिशा समाज आपकी अत्यंत आभारी है।

पंडितजी यहाँ पाँच बार प्रभावनापूर्ण शैली से प्रवचन करते थे। इस बार जितनी विशेषता के साथ पर्यूषण पर्व चला, आज तक उतनी विशेषता किसी साल नहीं रही। पंडितजी के समझाने की यह विशेषता है कि सुननेवाले विषय को ग्रहणकर रुचिपूर्वक सुनते-समझते एवं मनन करते हैं। पंडितजी का प्रयत्न उत्तम है, अकथनीय है।

यहाँ के कई भाईयों ने हमेशा प्रातःकाल ५ से ६ तक जैन शिक्षणवर्ग के रूप में अध्ययन करने का निर्णय किया है, जिसमें लघु जैन सिद्धांत प्रवेशिका, छहढाला, प्रश्नोत्तरमाला का अध्ययन करना तय हुआ है।

(५) खंडवा (म०प्र०) से दिगम्बर जैन समाज का पत्र है कि—हमारे यहाँ पर्यूषण पर्व पर धर्मवत्सल पंडित श्री गेंदालालजी बूँदी निवासी पधारे थे। आप बहुत ही अनुभवी एवं उच्च कोटि के विद्वान हैं। उन्होंने यहाँ पर श्री समयसार-मोक्षशास्त्र, मोक्षमार्गप्रकाशक, छहढाला, दसधर्म के ऊपर विवेचन किया है, वह बहुत अपूर्व एवं अलौकिक था। तत्त्वों को समझाने की आपकी जो शैली थी, वह तो बहुत सरस थी, सरल थी। जैन सिद्धांतों को दृष्टांत द्वारा बहुत मृदुभाषा में स्पष्ट करके समझाते थे, पंडित श्री गेंदालालजी सा० पधारने से हमारे नवयुवक मंडल, महिलामंडल तथा सारी समाज को पूर्ण लाभ मिला, उनके प्रवचन बहुत रुचिकर थे, सब बहुत जिज्ञासा से एकाग्रचित्त होकर सुनते थे और हमेशा आपके प्रवचन सुनने की बहुत जिज्ञासा रहती थी, कारण कि उनकी प्रवचन शैली विशेष प्रभावशाली थी। अतः पंडितजी के पधारने से खंडवा समाज को अति आनंद हुआ।

(६) उज्जैन (म०प्र०) से दिगम्बर जैन मुमुक्षुमंडल का पत्र है—हमारी विनती के अनुसार आपने पंडित श्री कैलाशचंदजी बुलंदशहरवालों को भेजा, धर्म प्रभावना का काम अच्छा एवं उत्तम रहा। हम सोनगढ़ दिगम्बर जैन मुमुक्षु महामंडल और पूज्य कानजी स्वामीजी के प्रति अत्यंत आभार प्रदर्शित करते हैं। पंडितजी का कार्यक्रम बड़े उत्साह और प्रसन्नता के साथ चलता था। वे चार टाइम क्लास लेते थे। जिसमें उपादान-निमित्त; चार अभाव; छह सामान्यगुण; छह कारक आदि विषयों पर स्पष्टतापूर्वक विवेचन चलता था। तदुपरांत जिनमंदिरजी में पूजन तथा प्रवचन का कार्यक्रम भी चलता था। यहाँ का वातावरण अच्छा ही रहा, लोगों की धारणा में गलत बातें थी वह दूर हुई।

(७) **बिजौलियां (राजस्थान)** खास श्री नाथुलालजी सा० बुलाने आये थे और ब्रह्मचारी केशवलालजी (चौधरी वासणा गुजरात) को भेजा था, वहाँ से समस्त दिगम्बर जैन समाज की ओर से पत्र है जिसका संक्षिप्त सार यह है कि—ब्रह्मचारी केशवलालजी अथक सद्प्रयत्न द्वारा, मोक्षशास्त्र (सोनगढ़ से प्रकाशित) टीका जो कि वस्तु स्वरूप का यथार्थ ज्ञान कराने में अनोखी है, उस पर बहुत सरलता से विवेचन करते थे। दसलक्षणधर्म नामक पुस्तक में से हमेशा एक-एक धर्म समझाते थे। मोक्षमार्गप्रकाशक अध्याय ७ में से सात तत्त्व के यथार्थस्वरूप पर अधिक खुलासा करते थे। जैनदर्शन शिक्षणवर्ग भी आप चलाते थे, जिसमें जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तरमाला चलाते थे। तदुपरांत जिनेन्द्र पूजा इत्यादि कार्यक्रम सुचारुरूप से चलता था।

यहाँ श्री दिगम्बर जैन मुमुक्षुमंडल की स्थापन की गई है। जिसमें खास तौर से सैद्धांतिक चर्चा होगी तथा जैन शिक्षणवर्ग हमेशा चालू रहेगा। ब्रह्मचारीजी द्वारा जो तत्त्व विवेचन हुआ, उससे मुमुक्षुओं को विशेष लाभ हुआ तथा सर्वज्ञ वीतराग कथित सिद्धांतों को समझने की उत्कंठा अधिक बढ़ी है।

(८) **अहमदाबाद**—दिगम्बर जैन मुमुक्षु मंडल का पत्र है कि—श्री छोटेलालभाई को दशलक्षणी पर्व में यहाँ भेजने से अति हर्ष और धर्म प्रभावना का कारण हुआ है। भाई श्री छोटेलालजी श्री समयसारजी शास्त्र, प्रवचनसारजी शास्त्र पर प्रवचन करते थे तथा जिनेन्द्र भगवान की भक्ति, पूजा, शाम को समूह प्रतिक्रमण बाद रात्रि में तत्त्वचर्चा, शंका-समाधान आदि कार्यक्रम नियमित चलता था, उससे धर्म प्रभावना बहुत अच्छी हुई है।

पूज्य स्वामीजी का सतत् परिचय और गाढ़ रुचि सहित तत्त्व अभ्यास द्वारा श्री छोटेलालभाई ने अध्यात्मतत्त्व के गूढ़ सिद्धांत को नय विभाग द्वारा बहुत स्पष्टता से और दृढ़ता से समझाने का सुप्रयत्न किया है, उसके फलस्वरूप धर्म जिज्ञासुओं को तत्त्वज्ञान का अपूर्व लाभ मिला है।

प्रवचन देने की शैली गंभीर भावों से भरी हुई तथा आकर्षक होने से सर्व श्रोतागण बहुत प्रसन्नता प्रगट करते थे। वास्तव में इन सब प्रभावनाओं का मूल तो पूज्य स्वामीजी-गुरुदेव ही हैं।

(९) **दाहोद**—से दिगम्बर जैन मुमुक्षुमंडल का पत्र है कि—परमोपकारी पूज्य स्वामीजी की कृपा से दसलक्षणी पर्व सानन्द व्यतीत हुआ। भाई श्री चन्दुलाल शिवलाल (अहमदाबाद) को हमारी विनति मान्य करके आपने भेजा इसलिये आभार। श्री चन्दुभाई के प्रवचन बहुत ही मार्मिक और मुमुक्षुओं को परम हितकर हुए हैं। आपने पूज्य स्वामीजी के निकट के परिचय में रहकर बहुत गूढ़ रहस्यों का अभ्यास किया है, वह बात अपने प्रवचनों में तत्त्वज्ञान की सूक्ष्मता से भरी हुई कथनी द्वारा खयाल में आती थी। जिनेन्द्र भगवान की भक्ति, चर्चा समाधान आदि द्वारा बहुत

आनन्दपूर्वक पर्व के दिवस समाप्त हुए। पूज्य स्वामीजी के परम प्रताप से प्रकाशित जिनागम के रहस्यों द्वारा भारत की सभी धर्म जिज्ञासु समाज अपूर्व तत्त्व को समझे ऐसी हम सबकी भावना है।

(१०) घाटकोपर (मुम्बई) से दिगम्बर जैन मुमुक्षुमंडल का पत्र है कि आपने भाई विद्वानवक्ता श्री प्राणलाल मगनलाल शाह को भेजा, इसलिये हम सभी हार्दिक आभार प्रदर्शित करते हैं और भविष्य में भी ऐसा ही सुंदर सहयोग मिले, ऐसी अभ्यर्थना है। हमेशा सबेरे जिनेन्द्र भगवान का अभिषेक, पूजा बाद प्रवचन, दोपहर में प्रवचन के बाद भक्ति, शाम को समूह प्रतिक्रमण, बाद स्वाध्याय, भक्ति तथा शंका-समाधान का कार्यक्रम रखा था।

श्री नेमिनाथ भगवान की भव्य रथयात्रा निकली थी। घाटकोपर हिन्दू महासभा के विशाल हाल में जिन प्रतिमाजी को विराजमान करके अभिषेक पूजन करके हमेशा धर्म पर्व मनाया गया।

प्रवचन में सबेरे श्री समयसारजी, दोपहर पद्मनन्दी, रात्रि में मोक्षमार्गप्रकाशक चलते थे। धर्म जिज्ञासु ५०० से ६०० नियमित समय पर सभा में उपस्थित होते थे। सब एकाग्रचित्त से सुनते थे।

अकलंक निकलंक के नाट्योत्सव में बड़ी संख्या थी। १५०) रुपये के इनाम बालकों को दिये गये थे।

(११) बंबई (१७३-७५ मुंबादेवी रोड) से दिगम्बर जैन मुमुक्षुमंडल का पत्र—श्री लालचंदभाई यहाँ पधारे थे, उनके द्वारा परमोपकारी पूज्य स्वामीजी की अपूर्व अमृत प्रसादीरूप प्रवचनों का लाभ धर्म जिज्ञासुओं को प्राप्त हुआ। जिनेन्द्र भगवान की रथयात्रा आदि कार्यक्रम हरसाल माफिक अत्यंत उत्साहपूर्वक रहा, धर्म प्रभावना बढ़ रही है। श्री चन्दूलाल जीवराज की धर्मपत्नी सौ० श्री चम्पाबहिन ने दशलक्षण व्रत के दस उपास किये थे। हरसाल माफिक प्रीतिभोज हुआ था, संख्या ३२०० उपरांत थी।

भिन्न-भिन्न खाते में ६७०००) रुपये की रकम आई। श्री कहान नगर सोसायटी—दादर विभाग में जिन मंदिर—समवसरण मंदिर तैयार हो गया है, जो अतिशय मनोज्ञ है, दर्शनीय है।

(१२) राजकोट (सौराष्ट्र) से पत्र-श्री खेमचंदभाई शेठ को भेजने से १२ दिन तक असाधारण धर्म प्रभावना हुई और धर्म जिज्ञासु समाज को बहुत आनंद आया, तथा उन्होंने परमोपकारी पूज्य स्वामीजी का दिव्य संदेश सुनाया। जिनेन्द्र भगवान की भव्य रथयात्रा, पूजन, भक्ति आदि कार्यक्रम हर साल माफिक अत्यंत उत्साह से हुये थे।

[श्री खेमचंदभाई तथा श्री लालचंदभाई बहुत प्रसिद्ध व्यक्ति हैं, विशेष योग्यतावंत हैं, उनके द्वारा हुई प्रभावना का विशेष वर्णन करने की आवश्यकता नहीं है।]

(१३) इन्दौर (म०प्र०) तारीख १६-९-१९६३ श्री बाबूभाई फतेपुर निवासी जो खंडवा दो दिन ठहरकर-जबलपुर दशलक्षण पर्व पर आमंत्रण से गये थे, वहाँ से आप इन्दौर आमंत्रण से आये। इन्दौर से परम हर्षमय प्रभावना के बहुत विस्तृत समाचार आये हैं, उनमें से एक पत्र का संक्षिप्त सार:—

यहाँ पर श्री सीमंधरादि २० तीर्थंकर भगवंतों का बृ० पूजन मंडल विधान मंडवाया था, उसमें श्री बाबूभाई का लाभ मिलने से सारे समाज को अपूर्व उत्साह आया। श्री बाबूभाई मनोज्ञ वक्ता हैं, और धर्म प्रभावक व्यक्ति विशेष हैं। आप पूजन विधि बाद सबेरे मोक्षमार्गप्रकाशक पर प्रवचन करते थे। १ से ३ बजे तक मंडल विधान की पूजा, रात्रि में ८ से ९ बजे तक श्री समयसारजी शास्त्र, पुण्य-पाप अधिकार पर प्रवचन करते थे। सब प्रवचनों में श्रोताओं की संख्या अधिक रहती थी (करीब पाँच हजार से ज्यादा)।

दोपहर के समय मंडलविधान-पूजा में १५०० से २००० तकसंख्या होती थी। शाम को सामूहिक भक्ति में २-३ हजार भाई-बहिनें बच्चे सहित आते थे। बाबूभाई द्वारा होनेवाली जिनेन्द्रभक्ति की परम उमंग देख-देखकर आबाल-वृद्ध भक्ति से नाचने लगते थे। सब भाई-बहिनों और बच्चों को इतना अधिक उत्साह आया था कि ९० साल तक के वृद्ध लोग भी कहते हैं कि हमने सारी उम्र में इतना बड़ा जुलूस-भक्ति का सातिशय उत्साह और प्रवचन तथा पूजन आदि में इतनी भारी भीड़ कभी नहीं देखी है और इसप्रकार के प्रवचन कभी नहीं सुने हैं। सब भाईयों का कहना है कि सच्ची समझ और सच्चा व्यवहार ही सोनगढ़ में होता है। श्री बाबूभाई द्वारा हर प्रवचन में निश्चय-व्यवहार, पुण्य-पाप और सम्यक्त्व आदि विषय पर बहुत खुलासा हुआ। सब रुचिपूर्वक सुनते थे, समाज में अध्यात्म की बाढ़ आ गई है। धर्म के नाम पर गलत धारणायें थीं, नष्ट हुईं।

समाज पर परमोपकारी पूज्य कानजी स्वामी के पुनीत प्रभाव की अनेरी छाप पड़ी है। इन्दौर में इतना सुंदर धार्मिक प्रचार का कार्य हुआ है... कि जिसके विस्तृत समाचार फिर भी १० पृष्ठ में आये हैं।

श्री पंडित नाथुलालजी शास्त्री की अध्यक्षता में तारीख १८-९-६३ के दिन विशाल जन

समुदाय की उपस्थिति में दिगम्बर जैन समाज की ओर से श्री बाबूभाई को सन्मानपत्र दिया गया तथा श्री इन्दोरीलालजी वकील, पंडित श्री नाथुलालजी, श्री बाबूलालजी पाटोदी, श्री नरेन्द्रकुमारजी पाटोदी आदि के भाषण हुये, सब भाईयों ने पूज्य सत्पुरुष श्री कानजी स्वामी के प्रति सच्चा सम्मान प्रदर्शित किया और सोनगढ़ का पूरा इतिहास तथा विशेषताओं को बड़े प्रेम से समाज के सामने प्रगट किया।

श्री बाबूभाई के प्रवचन अन्य अनेक मंदिरों में कराये गये थे। छावनी मंदिरजी में श्री सम्मेदशिखरजी का मंडल विधान मंडवाया गया था।

विशेष समाचार— श्री स्वाध्यायमंदिर की आवश्यकता ऊपर बात चली तो आधा घंटा में करीब २०००० की आमदनी हो गई। सब समाज मिलकर स्वाध्यायमंदिर बनावे-शिक्षणवर्ग चलावे-ऐसी भावना समाज ने प्रगट की। यह धार्मिक उत्सव चिरस्मरणीय रहेगा।

—पूनमचंद अर्जुनलाल छाबड़ा

(१४) लशकर (ग्वालियर) से मिश्रीलालजी पाटनी, अध्यक्ष श्री दिगम्बर जैन नया मंदिर का पत्र है। ब्रह्मचारी हेमराजजी व साथ में दयाचंदजी ब्रह्मचारीजी भी आये थे। इसलिये यहाँ की समाज अत्यंत आभारी है। ब्रह्मचारीजी दसलक्षण पर्व में सबेरे श्री समयसारजी शास्त्र पर प्रवचन करते थे, मध्याह्न दो घंटे सूत्रजी के एक-एक अध्याय के गूढ़ अर्थ को स्पष्ट करते थे, जो बड़ी आसानी से लोग समझ सकते थे। रात्रि को एक-एक धर्म पर प्रवचन होता था। शास्त्र प्रवचन में प्रतिदिन उत्तरोत्तर अधिक संख्या समय पर उपस्थित रहती थी, विशेषता में कई नवयुवक जिज्ञासु वर्ग भी श्रवण करने आते थे, जिज्ञासुओं को अत्यंत प्रिय लगते थे। प्रश्नोत्तर का भी कार्यक्रम रखा गया था। समाज को बहुत संतोष हुआ।

जनता की माँग आने पर ब्रह्मचारीजी अन्य मंदिरजी में भी प्रवचन देते थे। स्थानीय जनता के आग्रह पर यहाँ के मंदिरजी की व्यवस्थापक समिति ने अत्यंत हर्षायमान होकर ब्रह्मचारीजी को अभिनंदन पत्र समर्पित किया, ब्रह्मचारीजी ने लेने में इन्कार किया, कहा कि यह सब श्री कानजी स्वामीजी व सोनगढ़ मुमुक्षु महामंडल की कृपा है, मैं लेने का अधिकारी नहीं हूँ। बाद भेंटस्वरूप कुछ देने के लिये बहुत आग्रह किया किंतु न लिया। यह सब श्रेय महान संत श्री स्वामीजी महाराजजी का है कि हम अज्ञानी जिज्ञासुओं को अध्यात्म ज्ञान की चर्चा श्रवण में आती है।

नया प्रकाशन

मोक्षशास्त्र (तत्त्वार्थसूत्रजी)

(तीसरी आवृत्ति)

छपकर तैयार हो गया है। तत्त्वज्ञान के जिज्ञासुओं द्वारा उसकी बहुत समय से जोरों से माँग है, जिसमें सर्वज्ञ वीतराग कथित तत्त्वार्थों का और सम्यग्दर्शन आदि का निरूपण सुगम और स्पष्ट शैली से किया गया है, सम्यक् अनेकांतपूर्वक नयार्थ भी दिये हैं, और जिज्ञासुओं के समझने के लिये विस्तृत प्रश्नोत्तर भी नय प्रमाण द्वारा-सुसंगत शास्त्राधार सहित दिये गये हैं, अच्छी तरह संशोधित और कुछ प्रकरण में प्रयोजनभूत विवेचन बढ़ाया भी है, शास्त्र महत्वपूर्ण होने से तत्त्व प्रेमियों को यह ग्रंथ अवश्य पढ़ने योग्य है, पत्र संख्या ९०० करीब, मूल्य लागत मात्र ५), पोस्टेज आदि अलग।

लघु जैन सिद्धान्त प्रवेशिका

(चतुर्थ आवृत्ति)

१८०००, बुक छप चुकी हैं, बिक चुकी हैं, समाज में धर्म जिज्ञासा का यह नाप है। शास्त्राधार सहित संक्षेप में खास प्रयोजनभूत तत्त्वज्ञान की जानकारी के लिये यह उत्तम मार्गदर्शक प्रवेशिका है। जैन जैनेतर सभी जिज्ञासुओं में नि:संकोच बांटने योग्य है। इंगलिश भाषा में भी अनुवाद कराने योग्य है। जिसमें अत्यंत स्पष्ट सुगम शैली से मूलभूत अति आवश्यकीय बातों का ज्ञान कराया गया है। बढ़िया कागज, छपाई, सुंदर आकार, पृष्ठ संख्या १०५, मूल्य सिर्फ २५ नये पैसे, पोस्टेजादि अलग।

पता—**श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट**
सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

परमपूज्य श्री कानजी स्वामी के आध्यात्मिक वचनों का अपूर्व
लाभ लेने के लिये निम्नोक्त पुस्तकों का—

अवश्य स्वाध्याय करें

समयसार शास्त्र	५-०	जैन बाल पोथी	०-२५
प्रवचनसार	प्रेस में	छहढाला बड़ा टाईप (मूल)	०-१५
नियमसार	५-५०	छहढाला (नई सुबोध टी.ब.)	०-८७
पंचास्तिकाय	४-५०	ज्ञानस्वभाव ज्ञेयस्वभाव	२-५०
मोक्षशास्त्र बड़ी टीका (तीसरी आवृत्ति)	५-०	सम्यग्दर्शन (तीसरी आवृत्ति)	१-८५
मुक्ति का मार्ग	०-६०	जैन तीर्थयात्रा पाठ संग्रह	१-४५
समयसार प्रवचन भाग १	४-७५	अपूर्व अवसर प्रवचन और	
समयसार प्रवचन भाग २	४-७५	श्री कुंदकुंदाचार्य द्वादशानुप्रेक्षा	०-८५
समयसार प्रवचन भाग ३	४-२५	भेदविज्ञानसार	२-०
समयसार प्रवचन भाग ४	४-०	अध्यात्मपाठसंग्रह पक्की जिल्द	५-०
[कर्ताकर्म अधिकार, पृष्ठ ५६३]		'' '' कच्ची जिल्द	२-२५
मोक्षमार्ग-प्रकाशक की किरणें प्र०	१-०	भक्ति पाठ संग्रह	१-०
'' ''द्वितीय भाग	२-०	वैराग्य पाठ संग्रह	१-०
जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तरमाला प्र०	०-६०	निमित्तनैमित्तिक संबंध क्या है ?	०-१५
द्वितीय भाग	०-६०	स्तोत्रत्रयी	०-५०
तृतीय भाग	०-६०	लघु जैन सिद्धांत प्रवेशिका	०-२५
श्री अनुभवप्रकाश	०-३५	'आत्मधर्म मासिक' वार्षिक चंदा	३-०
श्री पंचमेरु आदि पूजा संग्रह	१-०	'' फाईलें सजिल्द	३-७५
दसलक्षण धर्मव्रत उद्यापन		शासन प्रभाव तथा स्वामीजी की जीवनी	०-१२
बृ० पूजा भाषा	०-७५	जैनतत्त्व मीमांसा	१-०

[डाकव्यय अतिरिक्त]

मिलने का पता—
श्री दि० जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

मुद्रक—नेमीचन्द बाकलीवाल, कमल प्रिन्टर्स, मदनगंज (किशनगढ़)
प्रकाशक—श्री दि० जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट के लिये—नेमीचन्द बाकलीवाल।